संस्कृत-काव्य-तरङ्गिणी

संशोधितं संस्करणम्

(कक्षा 12 के लिए पाठ्यपुस्तक)

संपादक

प्रो० सत्यव्रत शास्त्री



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

National Council of Educational Research and Training

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की अनुमति से जुलाई 1977 में श्री महावीर बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली 110006 द्वारा प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत संशोधित संस्करण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित किया गया।

प्रथम संस्करण
जुलाई 1977 : श्रावण 1899

संशोधित संस्करण
जुलाई 1982 : आषाढ़ 1904

P. D. 5T—GLA

आवरण छायाचित्र : चन्द्रप्रकाश टंडन

मूल्य : रु० 3.30

प्रकाशन विभाग में श्री विनोद कुमार पंडित, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित तथा सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-110053 में मुद्रित।

प्रस्तावना

संस्कृतस्य महत्त्वमस्माकं शिक्षाव्यवस्थायामनुभूय विद्यालयेषु संस्कृतशिक्षणार्थ-मुपयुक्तपाठ्यक्रमतदनुरूपपाठ्यपुस्तकादिशिक्षणसामग्रीणां च विकासक्रमे राष्ट्रिय-शैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषदः सामाजिकविज्ञानमानविकीशिक्षाविभागेन पञ्चमवर्गादारभ्य द्वादशवर्गपर्यन्तं आदर्शपाठ्यक्रमं निर्माय संस्कृतपाठ्यपुस्तकानि प्रणीतानि। अस्मिन्नेव क्रमे प्रो० के० राघवन् पिल्लई महोदयानामाध्यक्ष्ये संस्कृतसम्पादनमण्डलमेकं 1976-77 वर्षावधौ गठितमासीत्। अस्यमण्डलस्यैव निर्देशने दिल्लीविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागाध्यक्षैः प्रो० सत्यव्रतशास्त्रि-महोदयैः परिषदनुरोधेण नवीनशिक्षापद्धत्यनुसारेण उच्चतरमाध्यमिकच्छात्रेभ्यो प्रमुखेभ्यः पद्यग्रन्थेभ्यः प्रतिनिधिभूतान् पद्यान् संकलय्य विशदभूमिकाटिप्पण्यादिना समलङ्कृत्य प्रस्तुतं 1977 ख्रि० **संस्कृतकाव्यतरङ्गिणी** नाम पद्यसङ्कलनमेकम्। एतदर्थं संपादनमण्डलम्, अस्याध्यक्षाः प्रो० पिल्लईमहाभागाः, सम्पादकाः प्रो० सत्यव्रतशास्त्रिमहोदयाश्च अस्माकं नितरां। धन्यवादार्हाः।

पद्यसङ्कलनमिदं छात्राणां कृते उपयुक्ततरं भवेदिति उद्दिश्य विगतपञ्चसु वर्षेषु अस्याध्यापने प्राप्तानुभवान् विशेषज्ञानाञ्च परामर्शान् सम्यग् विचार्य प्रस्तूयतेऽधुना पुस्तकस्यास्य **द्वितीयं संशोधितं संस्करणम्**।

अस्य पुस्तकस्य योजनाप्रभृति विविधकार्यसम्पादनाय परिषदः अनुभवी प्रवाचकः डा० मा० गो० चतुर्वेदी अस्माकं धन्यवादमर्हति। संशोधित-संस्करणस्य पाण्डुलिपिनिर्माणतत्प्रकाशनादिकार्यसम्पादने कृतश्रमः परिषदः संस्कृतप्रवाचकः डा० कमलाकान्तमिश्रः प्रभूतं साधुवादमर्हति। कार्येऽस्मिन् सहयोगाय श्रीमती उर्मिलखुंगरमहोदयापि धन्यवादार्हा। पुस्तकस्य समीक्षार्थं संशोधितपाण्डुलिपिनिर्माणार्थं च आयोजितकार्यगोष्ठ्यामागत्य ये संस्कृत-शिक्षकाः विषयविशेषज्ञाश्च बहुमूल्यं परामर्शादिकं प्रदाय सहयोगं कृतवन्तः, तान् प्रति परिषदियं स्वकार्तज्ञं प्रकटयति।

पुस्तकमिदमतोऽपि उपयुक्ततरं कर्तुं प्रेष्यमाणाः परामर्शाः सदैवास्माकं स्वागतार्हाः भवेयुः।

शिवकुमारमिश्रः
निदेशकः
राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषद्

नवदेहली
14 जून 1982

सम्पादकीय वक्तव्य

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में विद्यालयीय स्तर पर संस्कृत शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री निर्माण हेतु प्रो० के० राघवन् पिल्लई की अध्यक्षता में संस्कृत-संपादन-मंडल का गठन सन् 1976-77 में किया गया। संपादन-मंडल ने माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर संस्कृत शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम तैयार कर पाठ्यपुस्तक निर्माण का कार्य संस्कृत के गणमान्य विद्वानों को सौंपा। इसके अंतर्गत उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए संस्कृत काव्य-संकलन तैयार करने का कार्य मुझे सौंपा गया। इसके प्रतिफलन के रूप में **संस्कृतकाव्यतरङ्गिणी** का प्रथम संस्करण सन् 1977 में निर्मित एवं प्रकाशित हुआ। इस संकलन में वैदिककाल से लेकर मध्यकाल तक संस्कृत की समृद्ध काव्यधारा में से प्रमुख प्रतिनिधिभूत काव्यरत्नों का संकलन किया गया है। संकलन में छात्रों की रुचि और मानसिक विकास का ध्यान रखा गया है।

इस काव्य के संपादन में सहयोग एवं सुझाव आदि के लिए मैं प्रो० के० आर० पिल्लई, अध्यक्ष, संस्कृत-संपादन-मंडल तथा अन्य सदस्यों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। विभागीय सहयोग के लिए परिषद् के प्रवाचक डा० मा० गो० चतुर्वेदी तथा श्रीमती उर्मिल खुंगर के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ। पुस्तक के सामग्री-संकलन में सहायता करने के लिए मैं श्री जियालाल कंबोज के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

संस्कृतकाव्यतरङ्गिणी का प्रथम संस्करण 1977 में प्रकाशित हुआ था। तब से लेकर अब तक पांच वर्षों का समय बीत चुका है। अनेक उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में इसे पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाया गया। अध्यापकों ने इसके बारे में जो अनुभव किया उसके परिप्रेक्ष्य में इसका प्रतिसंस्कार आवश्यक समझा गया। इसके लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में दो विचारगोष्ठियों का आयोजन किया गया, एक दिसम्बर 1980 में और दूसरी फरवरी 1981 में। इसमें देश के विभिन्न विद्वानों ने भाग लिया। एक-एक विषय उन्होंने अच्छी तरह तोला, परखा और स्वीकार किया। उसी का परिणाम यह संस्करण है।

संकलन में परिमार्जन की चर्चा के प्रसंग में यह उल्लेख आवश्यक है कि उसकी कमियों का अंकन संकलित अंशों की कमियों के संदर्भ मे ही केवल नहीं होता, विशेषकर जबकि संकलित अंश प्राचीन वाङ्मय से लिये गये हो। अनेक बार यह देखना आवश्यक हो जाता है कि जिन विद्यार्थियों के लिए वह संकलन है कहीं उनकी पहुँच से बाहर तो वह नहीं। यह भी देखना आवश्यक होता है कि पढ़ाई के लिए निर्धारित समय की दृष्टि से उसका कलेवर कहीं बहुत अधिक तो नहीं बढ़ गया है। उन्हीं के सुझाओं को परिमार्जन और परिष्करण में सर्वाधिक प्रधानता दी गयी है। अनेक अंशों को हटा दिया गया है। टिप्पणियाँ यत्र-तत्र बढ़ा दी गई है। पाठों की अवतरणिका को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। भरसक प्रयत्न इस परिष्कार में रहा है कि संकलन को यथासम्भव सुग्राह्य एवम् उपयोगी बनाया जाए। इसमें कहाँ तक सफलता मिली यह विद्वज्जन ही बता सकेंगे—

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।

संस्कृत काव्य-वाङ्मय सुतरां विशाल है। वैदिक काल से लेकर आज तक उसकी एक अविच्छिन्न परम्परा चली आई है। उसका किंचिन्मात्र परिचय ही एक विशेष अवस्था के विद्यार्थियों को दिया जा सकता है। यही संकलन की सीमारेखा निर्धारित करता है। संकलनकर्त्ता को अनेक बार अपनी इच्छाओं पर अंकुश लगाना पड़ता है। वह अधिक से अधिक केवल कतिपय प्रतिनिधि रचनाओं से ही अंश ले पाता है। ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने का भय सदा एक छाया के समान उसका पीछा करता रहता है।

एक सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री ने कहा था—अच्छा अधिक अच्छे का शत्रु है—(Good is the enemy of better)। प्रस्तुत सङ्कलन को अनेक विद्वज्जनों के सुझाव पर, विचारगोष्ठियों में हुई चर्चा के आधार पर अच्छा बनाने का प्रयास किया गया है। पर इतने से ही हमे संतोष नहीं है। यह और अच्छा बने, इसके लिए हमारा सतत प्रयास रहेगा। तदर्थ सभी विद्वानों के सुझावों का सादर-सदा-सर्वदा स्वागत किया जायगा।

प्रस्तुत संस्करण को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में विचारगोष्ठियों में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए सुझावों के क्रियान्वयन में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के संस्कृत विभाग के अध्यवसायी उपाचार्य डा० कमलाकान्त मिश्र तथा उनके सहयोगियों ने जो परिश्रम किया, उसके लिए उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

सत्यव्रत शास्त्री
आचार्य एवम् अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
तथा अधिष्ठाता, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली
19 अप्रैल 1982

विषयानुक्रमणिका

संपादन-मण्डलम्-1977

भूमिका

संस्कृत संसार की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है और उसका साहित्य विश्व में प्राचीनतम है। मैक्समूलर के अनुसार ऋग्वेद संसार के पुस्तकालय का प्राचीनतम ग्रन्थ है।

कई हजार वर्ष पहले आर्य भारत के उस भू-भाग में रहते थे जिसे आजकल मध्य एशिया के नाम से पुकारा जाता है। वहाँ से वे उस क्षेत्र की ओर बढ़े जिसमें अब पाकिस्तान और आधुनिक भारत के कश्मीर, पंजाब और हरियाणा प्रदेश सम्मिलित हैं। अर्वाचीन विद्वानों के अनुसार इस प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य से द्रवीभूत उनके हृदय में जो कविता फूटी वही ऋग्वेद के सूक्तों मे संगृहीत है। ऋषियों ने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों में अग्नि, इन्द्र, वरुण, सवितृ, विष्णु, मित्र, पर्जन्य आदि देवताओं की कल्पना की और उनकी स्तुति में गीत गाये। उन्हें प्रसन्न करने के लिए उन्होंने घृत, दुग्ध, सोम आदि की आहुतियाँ उन्हें समर्पित कीं। आर्यों का दस्युओं से युद्ध हुआ। इन्द्र आर्यों का नेता बना। उसने विष्णु, मरुत् तथा अन्य देवताओं की सहायता से दस्युओं को परास्त किया। वृत्र, शंबर आदि अनेक दस्यु वीर हार गए। दो संस्कृतियों का संगम हुआ और एक अभिनव चेतना का जन्म हुआ। आर्यों ने ग्रामीण जीवन के साथ कृषि को भी अपनाया। स्थिर और शान्तिपूर्ण जीवन के साथ दार्शनिक चिन्तन आरंभ हुआ। वैदिक ऋषियों ने जगत् के रहस्य को ढूँढ़ना चाहा। उन्हें वैदिक देवताओं में एकात्मकता के दर्शन हुए और वे पुकार उठे **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**। यह भावना उपनिषदों में विकसित और पल्लवित हुई और आत्मा, परमात्मा, ज्ञान, मुक्ति आदि विषयों पर विशद चर्चा की गई। राज्य-व्यवस्था और राजा का जन्म हुआ। आर्य-समुदाय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

और शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त हो गया। आश्रम धर्म की भी स्थापना हुई। राजा, प्रजा, वर्णों और आश्रमों के धर्म निश्चित किये गए। समाज में हर प्रकार की व्यवस्था के लिए स्मृतियों और धर्मनिबन्धों की रचना हुई। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय पर विशद चर्चा की गई। ये सब बातें आख्यानों और उपाख्यानों सहित रामायण और महाभारत जैसे महान् और बृहदाकार ग्रन्थों में संकलित की गईं।

रामायण और महाभारत वैदिक और लौकिक साहित्य को जोड़ने वाली कड़ी का काम करते हैं। यही कारण है कि रामायण और महाभारत के रचयिता वाल्मीकि और व्यास कवि होते हुए भी ऋषि कहे जाते हैं और उनकी कृतियाँ आर्ष कृतियाँ कहलाती हैं। ये वे कृतियाँ हैं जिन पर भगवान् पाणिनि के धर्मदण्ड का बस न चल सका। इसके पश्चात् आने वाले अश्वघोष, कालिदास आदि के काव्य कुछ अपवादों को छोड़कर पाणिनि के व्याकरण से पूरी तरह अनुशासित हैं। संस्कृत काव्य की यह धारा अजस्र रूप से आगे बढ़ती हुई आधुनिक काल तक पहुँच गई है। आज भी संस्कृत भाषा में साहित्य की विविध विधाओं में निरन्तर रचना हो रही है।

वेद के सूक्तों को गीतकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। उपनिषदों के पद्यबद्ध मंत्रों को मुक्तक काव्य की कोटि मे रखा जा सकता है परन्तु लौकिक काव्य साहित्य में एक नवीन विधा का विकास हुआ जिसे महाकाव्य के नाम से पुकारा जाता है। वैसे तो महाकाव्य के लक्षण सर्वप्रथम रामायण में दृष्टि-गोचर होते हैं और वाल्मीकि को आदिकवि और रामायण को आदिकाव्य के नाम से पुकारा जाता है परन्तु महाकाव्य के बीज वैदिक साहित्य में भी ढूंढ़े जा सकते है।

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि सभी देशों मे महाकाव्यों की रचना का श्रीगणेश वीरगाथाओं (Heroic Ballads) से होता है। इन वीरगाथाओं को जन्म देने वाले युग को वीरगाथा काल के नाम से अभिहित किया जाता है। यही वीरगाथा काल अन्य देशों की भाँति भारतीय महाकाव्यों का भी उद्भव और विकास का काल कहा जा सकता है। भारतीय इतिहास में रामायण और महाभारत के रचनाकाल को वीरगाथा काल के नाम से पुकारा जाता है। हम देखते हैं कि काव्य कला के विकास की दृष्टि से भी रामायण और महाभारत वैदिक और लौकिक साहित्य के मध्य एक कड़ी का काम करते हैं।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का विचार था कि भारत में महाकाव्य का उद्भव और विकास सर्वप्रथम प्राकृत आदि जनभाषाओं मे हुआ और उसी के आधार पर ईसा की प्रथम शताब्दी और उसके पश्चात् संस्कृत महाकाव्यों की रचना हुई, परन्तु अब यह मत निराधार सिद्ध हो चुका है क्योंकि ईसा के जन्म से पूर्व

भी महाकाव्यों की रचना के संकेत मिलते हैं। कहा जाता है कि *पाणिनि* (500 ई० पूर्व) ने **जाम्बवती-परिणय** और **पाताल-विजय** नामक दो काव्य लिखे थे। पाणिनि के नाम से कुछ उदाहरण सुभाषितों में भी मिलते हैं। *पतञ्जलि* (200 ई० पू०) ने **महाभाष्य** में *वररुचि* के **वाररुचं काव्यम्** का संकेत किया है। इसके अतिरिक्त **वासवदत्ता, सुमनोत्तरा** और **भैमरथी** इन तीन आख्यायिकाओं और **कंसवध** और **बलिबन्धन** नामक दो अन्य कृतियों का भी उल्लेख किया है। कुछ ग्रन्थों में इनसे कुछ पद्य उद्धृत होते हुए भी किसी भी स्रोत से यह पता नहीं चल सका है कि इन कृतियों का वास्तविक स्वरूप क्या था। इन सब बातों से इस बात की पुष्टि होती है कि ईसा-पूर्व चोथी-पाँचवी शताब्दी या इससे पूर्व ही संस्कृत में विदग्ध काव्य की रचना प्रारम्भ हो चुकी थी। ईसा के जन्म के पश्चात् दो-तीन शताब्दियों के शिला-लेखों की भाषा, शैली और छंद एवं अलंकार आदि के वैविध्यपूर्ण विकास से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। इसी समय *पिंगल* के **छंदःशास्त्र** और *वात्स्यायन* के **कामशास्त्र** का प्रणयन भी इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण है।

महाकाव्य के लक्षण

महाकाव्य *महत्* और *काव्य* इन दो शब्दों का समस्त रूप है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग **रामायण** के **उत्तरकांड** में हुआ है, परन्तु किसी पारिभाषिक शब्द के रूप में नहीं। जैसे-जैसे महाकाव्यों की उत्तरोत्तर रचना हुई वैसे-वैसे ही महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण भी प्रारंभ हो गया। आचार्य *विश्वनाथ* के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं—

"जिसमें सर्गों का निबंधन हो उसे महाकाव्य कहते है। इसमें एक देवता अथवा धीरोदात्तादि गुणों से युक्त सद्वंश क्षत्रिय नायक होता है। कहीं एक ही वंश के सत्कुलीन अनेक राजा भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर और शांत मे से कोई एक रस अंगी होता है। अन्य रस गौण होते हैं। इसमें सब नाटक-संधियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जन-विषयक होती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक इसका फल होता है। आरंभ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है। कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण-वर्णन होता है। इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े, आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें से प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद होता है, किन्तु सर्ग का अन्तिम पद्य भिन्न छंद का होता है। कहीं-कहीं एक ही सर्ग मे अनेक छंद होते हैं। सर्ग के अंत में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, षड्ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि,

स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मंत्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से (जैसे **माघ**) या चरित्र के नाम से (जैसे **कुमारसंभव**) या चरित्र के नायक के नाम से (जैसे **रघुवंश**) होना चाहिए। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम होता है।"

मुख्य महाकाव्य

कुछ मुख्य महाकाव्य, जिनकी रचना महाकाव्य के उपरिलिखित लक्षणों के अनुसार है, निम्नलिखित हैं। *अश्वघोष*-कृत **बुद्धचरित** और **सौन्दरनन्द**, महाकवि *कालिदास* द्वारा रचित **कुमारसंभव** और **रघुवंश**, *भारवि* का **किरातार्जुनीय**, *माघ* का **शिशुपालवध** *श्रीहर्ष* रचित **नैषधीयचरित**, *कुमारदास* कृत **जानकीहरण** इत्यादि। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधीयचरित की संस्कृतवाङ्मय में सामान्यतः *'बृहत्त्रयी'* के नाम से जाना जाता है। रघुवंश एवं कुमारसंभव को इनके साथ मिला देने पर इन पाँच महाकाव्यों की बृहत्पञ्चक संज्ञा हो जाती है। महाकवि *अश्वघोष* और महाकवि *कालिदास* के महाकाव्य तो ऐसे हैं जिनके आधार पर उपरिलिखित लक्षणों का प्रतिपादन किया गया। *भारवि*, *माघ* आदि के महाकाव्य वास्तव में इन काव्यशास्त्रीय लक्षणों को मस्तिष्क में रखकर लिखे गये हैं।

खंडकाव्य

महाकाव्य के अतिरिक्त काव्य की एक दूसरी विधा है जिसे खंडकाव्य के नाम से पुकारा जाता है। खंडकाव्य की परिभाषा काव्यशास्त्रियों ने इस प्रकार दी है—**काव्यस्य एकदेशानुसारि**, अर्थात् महाकाव्य का कुछ अंशों में अनुसरण करने वाला। **मेघदूत** और **ऋतुसंहार** इस काव्य-श्रेणी के अच्छे उदाहरण हैं।

खंडकाव्यों से मिलते-जुलते कुछ अन्य लघु काव्य भी हैं जिन्हें हम चार भागों में बांट सकते है :

(क) शृंगारिक प्रेम काव्य
(ख) स्तोत्र काव्य
(ग) अन्योक्ति काव्य
(घ) उपदेशात्मक काव्य और सुभाषित।

शृंगारिक प्रेम काव्यों में **अमरुशतक** सौ पद्यों का एक उत्तम लघु काव्य है जिसके प्रणेता अमरु नामक कवि हैं। *भर्तृहरि* का **शृंगारशतक** भी इसी

कोटि का लघु काव्य है। इसके अतिरिक्त **घटकर्पर**, **चौरपंचाशिका** और **शृंगारतिलक** इस कोटि के उत्तम उदाहरण है।

स्तोत्र काव्यों मे जयदेव का **गीतगोविन्द** और सूर्य की स्तुति में **सूर्यशतक** सुन्दर उदाहरण हैं। बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त आदि सभी धर्मानुयायियों ने अपने-अपने अराध्य देवों की स्तुति मे काव्य की रचना की है। नवीं शताब्दी में देवपाल के आश्रित वज्रदन्त का **अवलोकितेश्वरशतक**, **चतुर्विशति-जिन-स्तुति** अथवा **चतुर्विशिका**, स्वामी *शंकराचार्य* और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा लिखे गये विभिन्न **शिव-स्तोत्र**, *आनंदवर्धन* का **देवीशतक**, *अवतार* का **ईश्वर-शतक**, *रत्नाकर* की **वक्रोक्तिपञ्चाशिका**, *कल्हण* का **अर्धनारीश्वर स्तोत्र**, *जगन्नाथ* की **अमृतलहरी**, **सुधालहरी**, **गङ्गालहरी**, **करुणालहरी** और **लक्ष्मी-लहरी** नामक पाँच लहरियाँ आदि स्तोत्रों के अनेक उदाहरण हैं। अन्योक्ति काव्य मे इस प्रकार के मुक्तक पद्यों की रचना की गई है जो कि किसी विशेष पशु, पक्षी के स्वभाव को व्यक्त करते हैं, परन्तु उसी स्वभाव या गुण वाले किसी व्यक्ति के विषय में भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं। अन्योक्ति काव्य के अन्तर्गत *शंभु* की **अन्योक्तिमुक्तालता** *नीलकंठ दीक्षित* (17वीं शताब्दी का पूर्वार्ध) का **अन्यापदेशनीतिशतक** आदि सुन्दर उदाहरण है। **उपदेशात्मक काव्य** में *भर्तृहरि* का **वैराग्यशतक**, *शिल्हण* का **शान्तिशतक**, *श्रीधरदास* का **सदुक्तिकर्णामृत** अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। सुभाषित वे सुंदर पद्य है जो या तो किसी कवि विशेष के द्वारा किसी लघु काव्य के रूप में रचे गये है अथवा विभिन्न काव्य-ग्रन्थों से चुन-चुन कर संगृहीत कर लिए गए है। प्रथम प्रकार में *भर्तृहरि* का **नीतिशतक** एक सुंदर उदाहरण है। दूसरे प्रकार में **कवीन्द्रवचनसमुच्चय** (11वी शताब्दी), **सुभाषितावलि**, **सुभाषितमुक्तावलि** अथवा **सूक्तिमुक्तावलि** (1257 में *जल्हण* द्वारा संकलित), **शार्ङ्गधरपद्धति** (1363 ई०) आदि प्रसिद्ध हैं।

पाठ्य-पुस्तक म संकलित काव्यधाराओं, कवियों और काव्यों का संक्षिप्त परिचय

वेद—वेद वह ज्ञान-कोष है जिसमें समस्त भारतीय विद्याओं का बीज निहित है। भारतीय परंपरा के अनुसार वेद अपौरुषेय और अनादि हैं, परन्तु आधुनिक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने उनकी रचना का काल निर्धारित करने का प्रयास किया है। कुछ विद्वान् ऋग्वेद का रचना-काल 1500 ईसा-पूर्व सिद्ध करते हैं तो दूसरे 5000 ईसापूर्व या इससे भी आगे तक जाते हैं। वास्तव में काल के निर्धारण के प्रमाणों के अभाव में हमें यही कहकर संतोष करना पड़ता है कि वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं।

वास्तव में वेद किसी व्यक्तिविशेष या कालविशेष की रचना नहीं हैं। प्रकृति की गोद में बैठे अनेक ऋषियों के हृदय से अनेक समयों में जो कविता प्रस्फुटित हुई वही मंत्र के नाम से प्रसिद्ध हुई। शताब्दियों तक इस प्रकार के साहित्य की रचना होती रही और यह साहित्य मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी पैतृक संपत्ति के रूप में संगृहीत होता रहा। आगे चलकर यह साहित्य संहिताओं में विभक्त हो गया। इस विभाजन का श्रेय भारतीय परंपरा महर्षि वेदव्यास को देती है। कहा भी है—

विव्यास हि यतो वेदान् वेदव्यास इति स्मृतः।

यह विभाजन मुख्य रूप से **ऋग्वेद, यजुर्वेद** और **सामवेद** के रूप में हुआ। जिन मंत्रों का प्रयोग प्रायः देवताओं की स्तुति के लिए होता था वे ऋग्वेद में संगृहीत कर लिए गए। जो मंत्र यज्ञकर्म में प्रयुक्त होते थे उन्हें यजुर्वेद में संकलित किया गया और जो मंत्र देवताओं की स्तुति के लिए गाए जाते थे वे सामवेद के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ ऐसे मंत्र भी थे जिनका संबंध

ओषधि-विज्ञान, आयुर्वेद, राज-कर्तव्य आदि अनेक धर्मेतर विषयों से था। ऐसे मंत्रों को **अथर्ववेद** नामक चौथे वेद के रूप में संगृहीत किया गया। विभाजन होते हुए भी अनेक ऐसे मंत्र हैं जो दो या दो से अधिक वेदों मे सामान्य हैं। सामवेद में 75 मंत्रों को छोड़कर शेष सब मंत्र ऋग्वेद के ही हैं। अथर्ववेद में भी उन्नीसवाँ और बीसवाँ काड ऋग्वेद के मंत्रों का ही संकलन है। यजुर्वेद में मंत्र प्रायः गद्य में हैं। अतः ऋग्वेद और अथर्ववेद दो ही ऐसे वेद हैं जो काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

ऋग्वेद दस मंडलों में विभक्त है। प्रत्येक मंडल में अनेक सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त मे अनेक मंत्र। ऋग्वेद में कुल मिलाकर 1028 सूक्त है और 10580 मंत्र। प्रथम और दशम मंडल को भाषा की दृष्टि से अर्वाचीन माना जाता है। इनमें अनेक ऋषियों के सूक्तों का संग्रह है। दूसरे से लेकर सातवें मण्डल तक प्रत्येक मण्डल में एक ही ऋषि या एक ही वंश के ऋषियों के सूक्त संगृहीत किए गए है, इसलिये वे वंश मंडलों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन मंडलों के ऋषि क्रमशः *गृत्समद*, *विश्वामित्र*, *वामदेव*, *अत्रि*, *भरद्वाज*, और *वसिष्ठ* हैं। आठवें मंडल में अनेक ऋषियों के सूक्त हैं, परन्तु कण्व वंश के ऋषियों की प्रधानता है। नवम मंडल की विशेषता यह है कि इसमें सभी सूक्त सोम देवता से संबंधित हैं।

ऋग्वेद में अग्नि, वरुण, रुद्र, विष्णु, पर्जन्य, उषस् आदि अनेक देवताओं की स्तुति के सूक्त हैं। सूक्तों की दृष्टि से इन्द्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण देवता हैं, परन्तु प्रत्येक मंडल में अग्नि के सूक्त सबसे पूर्व रखे गए हैं। ऋग्वेद में कतिपय सूक्त ऐसे भी हैं, जो भौतिक अथवा आध्यात्मिक विचारधारा से सम्बद्ध हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय है—*मण्डूकसूक्त* और *अक्षसूक्त*।

भाषा और काव्य की दृष्टि से दूसरा महत्त्वपूर्ण वेद अथर्ववेद है। इस वेद का नामकरण सम्भवतः किसी ऋषि के नाम पर हुआ है। इस वेद में संगृहीत मंत्रों का संबंध यज्ञीय विधि-विधानों से बहुत ही कम है। बहुत से विद्वानों को इसके स्वतंत्र वेद होने में भी सन्देह है।

अथर्ववेद बीस कांडों में विभक्त है। कांडों में सूक्त और सूक्तों में मंत्रों का संनिवेश है। कुल मिलाकर 731 सूक्त और 5849 मंत्र हैं। इस वेद का अस्सी प्रतिशत से भी अधिक भाग कविता में है। प्रारंभ के 13 कांडों में प्रार्थनाएँ, ज्ञान, विद्यावृद्धि एवं रक्षा आदि के मंत्र हैं। 14वें कांड में विवाह से संबंधित मंत्रों का संग्रह है। अठारहवें कांड में श्राद्ध आदि से संबंधित मंत्र है। बीसवें कांड में सोमयाग का विस्तृत वर्णन किया गया है।

पाश्चात्य एवं कुछ आधुनिक भारतीय विद्वानों की धारणा है कि अथर्ववेद में जादू-टोना, अभिचार, मारण, मोहन तथा उच्चाटन आदि की विधियों का

वर्णन है परन्तु सब मिलाकर इस वेद में गृहस्थ जीवन की आदर्शों से युक्त सुंदर व्याख्या की गई है। आयुर्वेद के सिद्धांत के अनुसार औषधों के उपयोग का वर्णन है। इसके अतिरिक्त राजनीति, राज्यपालन और ईश्वराराधन आदि विषयों की इसमें चर्चा है।

उपनिषद्—छंदोबद्ध काव्य की परंपरा में अगला स्थान उपनिषदों का है। वेदों की प्रत्येक संहिता के अपने-अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ब्राह्मणों के अन्तर्गत आरण्यक है और आरण्यकों के अंतर्गत उपनिषद्। ब्राह्मण और आरण्यक भाग गद्य में हैं। उपनिषद् अनेकानेक हैं परन्तु भारतीय परंपरा के अनुसार उनकी संख्या 108 मानी जाती है। उनमें से भी **ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, श्वेताश्वतर** और **बृहदारण्यक** ये ग्यारह उपनिषद् अधिक प्रसिद्ध हैं और उन पर भगवान् शकराचार्य ने भाष्य लिखा है।

उपनिषदों का प्रारंभ हम 600 वर्ष ईसापूर्व से मान सकते हैं। काल-क्रमानुसार बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और **कौषीतकि** प्राचीन हैं और गद्य मे लिखे गए हैं। तत्पश्चात् केन की रचना मानी जा सकती है, क्योंकि यह आंशिक रूप से गद्य में और आंशिक रूप से पद्य में लिखी गई है। काठक, ईश, श्वेताश्वतर, मुण्डक और **महानारायण** पद्य में हैं जिनमें आकर उपनिषदों के सिद्धान्त निश्चित हो गए हैं। प्रश्न, **मैत्रायणीय** और माण्डूक्य तीसरी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं और गद्य मे लिखे गए हैं। चौथी श्रेणी अथर्ववेद के उपनिपदों की है जो कि गद्य और पद्य दोनों मे उपनिबद्ध हैं।

यदि वैदिक सहिताओं और ब्राह्मणों को कर्मकांड कहा जाए तो उपनिषदों को ज्ञानकांड की संज्ञा दी जा सकती है। वास्तव में उपनिषदों में हमें एक नवीन धार्मिक विचारधारा के दर्शन होते हैं जो वैदिक यज्ञकर्म के बिल्कुल विपरीत है। उपनिषदों के अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य सांसारिक सुख-भोग अथवा स्वर्ग में मिलने वाला आनंद न होकर ज्ञान के द्वारा जीवन-मृत्यु के चक्कर से छूट कर जीवात्मा का ब्रह्म में विलय है। इसलिए यहाँ यज्ञीय कर्म की अपेक्षा ज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। ऋग्वेद के पुरुष और ब्राह्मणों के प्रजापति का स्थान यहाँ सर्वव्यापक निराकार ब्रह्म ने ले लिया है। यह जगत् ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। वास्तव में वह ब्रह्म ही सर्वत्र बहुरूप हो रहा है। यह जगत् भी पूर्ण है, वह ब्रह्म भी पूर्ण है। पूर्ण रूप से पूर्ण जगत् की सृष्टि होती है। पूर्ण जगत् के पूर्ण ब्रह्म से सृष्ट हो जाने पर भी ब्रह्म की पूर्णता बनी रहती है और जब यह पूर्ण जगत् पूर्ण ब्रह्म में लीन हो जाता है तब भी वह ब्रह्म पूर्ण ही रहता है। ऋग्वेद के बहुदेवतावाद से एकेश्वरवाद और एकेश्वरवाद से एकत्ववाद का उपनिषद् अंतिम सोपान है। उपनिषदों में कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों का भी प्रतिपादन हुआ है।

वाल्मीकि और रामायण

महर्षि वाल्मीकि को संस्कृत का आदिकवि और उनकी कृति **रामायण** को संस्कृत का आदिकाव्य माना गया है। उनके संबंध में एक कथा प्रसिद्ध है। एक बार वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर गए। वहीं पर क्रौंच और क्रौंची का कामातुर जोड़ा विहार कर रहा था। इतने में एक व्याध आया और उसने अपने बाण से क्रौंच को मार गिराया। क्रौंची पृथिवी पर छटपटाते अपने सह-चर को देखकर करुण क्रन्दन करने लगी। यह दृश्य देखकर वाल्मीकि का हृदय करुणा और शोक से भर गया और उनके मुख से अनायास यह पद्य निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

वाल्मीकि को इस वचन में एक विशेष संगीत और लय का आभास हुआ। वे बार-बार इस पद्य को दोहराने लगे। बाद में इसी पद्य के छंद के आधार पर उन्होंने रामायण की रचना की। यह छंद लौकिक संस्कृत का एक प्रसिद्ध छंद बना और अनुष्टुप् अथवा श्लोक छंद के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रामायण का रचना-काल 500 वर्ष ई० पू० माना जाता है। यह ग्रन्थ बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध और उत्तर इन सात कांडों में विभक्त है। पहले कांड के बहुत से भाग और सप्तम कांड को कालांतर में जोड़ा गया प्रक्षेप माना जाता है। कांड सर्गों में विभक्त हैं। रामायण में कुल मिलाकर चौबीस हजार श्लोक हैं। कवि ने राम की कथा को आधार बनाकर आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्व पत्नी और आदर्श सेवक का चरित्र प्रस्तुत किया है।

रामायण को आदि महाकाव्य मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं। वास्तव में इस सुदर कृति में महाकाव्य के अनेक लक्षण विद्यमान हैं। इसमे उच्च क्षत्रियकुलोत्पन्न सर्वगुणसम्पन्न मर्यादापुरुषोत्तम राम धीरोदात्त नायक है। आनन्दवर्धन के अनुसार करुण अंगी रस है। शान्त, वीर, श्रृंगार आदि रसों का भी अनेक स्थलों पर परिपाक देखने को मिलता है। आदि में वस्तुनिर्देश से काव्य का प्रारंभ होता है। स्थान-स्थान पर सत्य, धृति, धर्म आदि गुणों की प्रशंसा और दुर्गुणों और दुष्टो की निन्दा की गई है। कांडों का सर्गों में विभाजन है। अनेक सर्गों की समाप्ति का अन्य वृत्त के प्रयोग से संकेत किया गया है। कहीं-कहीं एक ही सर्ग में एक से अधिक वृत्तों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। अनेक सर्गों की समाप्ति पर भावी सर्ग की कथा की सूचना मिलती है। अनेक स्थलों पर

ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त आदि ऋतुओं, चाँदनी रात, चन्द्र, वन, नदी, सरोवर, शैल, समुद्र आदि का वर्णन मिलता है। वाल्मीकि का प्रिय छन्द *अनुष्टुप्* अर्थात् श्लोक है, परंतु अनेक स्थलों पर *इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ* आदि वृत्तों का भी प्रयोग किया गया है। अलंकारों मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है। भाषा सरल, सरस, प्रांजल और परिष्कृत है। शैली वैदर्भी कही जा सकती है। भाषा और भाव का समन्वय, सरलता, सुबोधता आदि सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। शैली के तीनों गुण प्रसाद, ओज और माधुर्य इसमे मिलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काव्य ने भारतीय काव्य को एक नया मोड़ दिया है और **अश्वघोष** और **कालिदास** जैसे कवियों के परिष्कृत और सुधरे हुए महाकाव्यों के लिए आदर्श प्रस्तुत किया है।

रामायण जैसा लोकप्रिय अन्य काव्य भारत के साहित्य में अनुपलब्ध है। यह काव्य संस्कृत एवं अन्य भाषाओं के कवियो के लिए उपजीव्य रहा है और असंख्य महाकाव्यो और नाटकों के कथानक इससे लिए गए है। आधुनिक भारतीय भाषाओ में भी अनेक कवियों ने रामायण की कथा को लेकर अपने काव्यों की रचना की है जिनमें *तुलसीदास* का **रामचरितमानस** और कम्ब की **रामायण** बहुत प्रसिद्ध हैं। वास्तव में काव्य के प्रारंभ मे ही की गई निम्नलिखित भविष्यवाणी बिल्कुल सत्य सिद्ध हुई है—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

वेदव्यास और महाभारत

वीरगाथा काल का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ **महाभारत** है। रामायण को जहाँ आदिकाव्य के नाम से अभिहित किया जाता है, वहाँ महाभारत इतिहास के नाम से प्रसिद्ध है और महर्षि *वेदव्यास* की कृति माना जाता है—

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः॥

वर्तमान महाभारत को किसी व्यक्तिविशेष और कालविशेष की रचना नहीं कहा जा सकता। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि महाभारत की रचना रामायण की रचना से पूर्व प्रारंभ हुई और बाद तक चलती रही। इसके रचनाकाल को हम सौ - दो सौ वर्षो तक सीमित नही कर सकते, अपितु वह कम से कम सात - आठ सौ वर्षो तक फैला हुआ है। इसलिए हम कह सकते हैं

कि महाभारत का रचना-काल छठी या पाँचवीं शताब्दी ईसापूर्व से दूसरी या तीसरी शती ईस्वी तक विस्तृत है।

महाभारत के आरंभ में ही यह संकेत मिलता है कि आदि में महाभारत में 8800 श्लोक थे। वास्तव में यही वेदव्यास की कृति थी जिसमें मूलरूप से कौरवों और पाण्डवों में युद्ध का वर्णन था और जो कि **जय** नाम से प्रसिद्ध थी। उसके शिष्य *वैशम्पायन* ने जब इसे अर्जुन के प्रपौत्र *जनमेजय* को उसके नागयज्ञ के अवसर पर सुनाया तो इसमें 24,000 श्लोक थे और इसका नाम **भारत** था। तत्पश्चात् जब *सौति* ने इसे नैमिषारण्य में ऋषियों को सुनाया तो इसमें 80,000 से भी अधिक श्लोक थे और इसका नाम **महाभारत** हो गया। इसके बाद **हरिवंशपुराण** भी इसमें मिला दिया गया और इस प्रकार इसकी श्लोक संख्या एक लाख हो गई।

महाभारत के आकार में वृद्धि के अनेक कारण है। प्रथम, अनेक आख्यान और उपाख्यान, जैसे *शकुन्तलोपाख्यान, नलोपाख्यान, रामोपाख्यान* इसमें सम्मिलित कर दिए गए। दूसरे, धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, दान, व्रत, तीर्थ-यात्रा आदि के विषयों पर बहुत-सी सामग्री इसमें जोड़ दी गई। *वन पर्व, शान्ति पर्व* और *अनुशासन पर्व* ऐसी सामग्री के भंडार हैं। तीसरे, शिव, विष्णु आदि मुख्य देवों की स्तुति में अनेक स्थलों पर सामग्री इसमें डाल दी गई। चौथे, वानप्रस्थों, संन्यासियों, तपस्वियों और तात्कालिक संप्रदायों के सिद्धांतों का समावेश भी इसमें हो गया। पाँचवें, पशु-पक्षियों की अनेक रोचक और शिक्षाप्रद कथाएं भी महाभारत का अंग बन गई। इस प्रकार महाभारत हर प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का भंडार हो गया। इसीलिए स्वयं महाभारत में गर्व के साथ यह घोषणा पाई जाती है—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥

समस्त महाभारत 18 पर्वों में विभक्त हैं और पर्व अध्यायों में विभक्त हैं। इसके अतिरिक्त एक दूसरा विभाजन भी है जिसके अनुसार संपूर्ण महाभारत 100 छोटे पर्वों में विभक्त किया गया है।

भारतीय धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान का विश्वकोश होने के अतिरिक्त काव्य के विकास की दृष्टि से महाभारत का यह महत्त्व है कि संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं में रचे गए काव्यों और नाटकों में कथानक अधिकांश महाभारत से लिए गए हैं। सस्कृत के पाँच मुख्य महाकाव्यों में कुमारसंभव और रघुवंश को छोड़कर सभी महाकाव्य महाभारत के कथानकों पर आधारित हैं।

भास के 13 नाटकों में से आधे नाटकों की कथावस्तु महाभारत से अधिगृहीत है। स्वयं महाभारत में ही यह भविष्यवाणी की गई है—

सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः॥

अश्वघोष

चीन में सुरक्षित परंपरा के अनुसार *अश्वघोष* महाराजा *कनिष्क* के गुरु थे। इसलिए अश्वघोष का काल-निर्धारण करने में कोई अधिक कठिनाई नहीं, क्योंकि उसके आश्रयदाता कनिष्क का काल ईसा की प्रथम शताब्दी निश्चित है। कवि के महाकाव्यों के अन्तःसाक्ष्य से यह सिद्ध हो चुका है कि वे *साकेत* के रहने वाले थे और उनकी माता का नाम *सुवर्णाक्षी* था। वे आर्य, भदन्त, महापंडित, महावादिन् एवं महाराज आदि बिरुदों से भी अलंकृत थे। उनका जन्म किसी ब्राह्मण वंश में हुआ था, परंतु बाद में वे बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए थे।

अश्वघोष की कृतियों का उल्लेख प्रसिद्ध चीनी यात्री *इत्सिंग* (671-695 ई०) ने किया है। **महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह, वज्रसूची, गंडीस्तोत्रगाथा** और **सूत्रालंकार** ये चार शुद्ध बौद्ध दार्शनिक ग्रन्थ अश्वघोष के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु चारों ग्रन्थ विवाद का विषय बने हुए है। महाकवि अश्वघोष की साहित्यिक रचनाओं की प्रामाणिकता के विषय में यह खींचा-तानी नहीं है। यह निश्चित है कि **बुद्धचरित, सौन्दरनन्द** और **शारिपुत्रप्रकरण (शारद्वती-पुत्रप्रकरण)** तीनों ही अश्वघोष की कृतियाँ हैं। इनमें से प्रथम दो महाकाव्य है और तीसरी एक *प्रकरण* कोटि का रूपक है जो कि प्रो० ल्यूडर्स को तुर्फान में तालपत्रों पर खंडित रूप में मिली थी।

बुद्धचरित महाकाव्य मे बुद्ध के जीवन, उपदेश तथा सिद्धांतों का काव्य के माध्यम से वर्णन है। इसके संस्कृत के केवल 17 सर्ग हैं जिनमें अंतिम चार सर्ग 19 वी शताब्दी के आरंभ में *अमृतानंद* के द्वारा जोड़े गए हैं। इस महाकाव्य का चीनी भाषा मे अनुवाद 414-421 ईस्वी में किया गया था जिसमे 28 सर्ग है और कथा बुद्ध के निर्वाण तक चली जाती है। सातवीं-आठवीं शताब्दी मे *तिब्बती* भाषा के अनुवाद में भी इस काव्य के 28 सर्ग है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद *शास्त्री* द्वारा प्राप्त ग्रंथ 14 वें सर्ग तक ही है और इसमें प्रथम सर्ग भी पूर्ण नहीं है।

सौंदरनन्द 18 सर्गो का महाकाव्य है। इसमें *गौतम* बुद्ध के सौतेले भाई नन्द और उसकी पत्नी *सुन्दरी* की कथा है। नन्द सुन्दरी में उसी प्रकार

आसक्त है जैसे चकवा चकवी में। नन्द तथा सुन्दरी के इस यौवनसुलभ प्रेम को आधार बनाकर प्रेम तथा धर्म के संघर्ष में नन्द की प्रव्रज्या का वर्णन कवि को अभीष्ट है। इस अद्भुत काव्य में बुद्धचरित की धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की रूक्षता, स्निग्धता तथा सौन्दर्य मे परिणत हो जाने से यह बुद्धचरित की अपेक्षा प्रौढ़ हाथ की रचना दिखाई देती है। बुद्धचरित में जिन घटनाओं का उल्लेख संक्षिप्त रूप से है या बिल्कुल नहीं है, उनका इस काव्य में विस्तृत वर्णन होने से इसे बुद्धचरित का पूरक कहा जा सकता है।

अश्वघोष की कलात्मक मान्यता उत्तरकालीन कवियों से भिन्न प्रकार की है। अश्वघोष न तो कालिदास की तरह रसवादी कवि हैं और न ही *भारवि* और *माघ* की तरह चमत्कारवादी। वे तो उपदेशक या प्रचारवादी कवि हैं और अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होंने काव्य को माध्यम बनाया है। पर उनके काव्य कोरे नीतिग्रन्थ भी नहीं हैं। उनमें काव्यसुलभ सौन्दर्य और रस का पूर्णरूपेण परिपाक हुआ है।

अश्वघोष की शैली सरल और सुन्दर है और उसे सरलता से वैदर्भी रीति की कोटि मे रखा जा सकता है। यद्यपि कवि ने कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो कालान्तर की भाषा मे प्रचलित नहीं, तथापि भावों की सुबोधता इससे बाधित नहीं होती। अश्वघोष की भाषा *पाणिनि* के व्याकरण के नियमों का पूर्णरूपेण पालन करती है, फिर भी कहीं-कहीं **गृहीत्वा** आदि के स्थान पर **गृह्य** आदि अपाणिनीय प्रयोग देखे जा सकते हैं।

कालिदास

कविकुलगुरु *कालिदास* संस्कृत-साहित्य-गगन में तारागण के मध्य पूर्णिमा के देदीप्यमान चंद्रमा की तरह शोभायमान है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। कुछ विदेशी विद्वानों ने उन्हें '*भारत का शेक्सपियर*' कहकर सम्मानित किया है। संस्कृत कवियों में निर्विवाद रूप से मूर्धन्य माने जाने वाले कालिदास को समस्त विश्व की साहित्यिक विभूतियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

महाकवि कालिदास का काल, जन्म-स्थान और जीवनवृत्त विद्वानों में विवाद का विषय बने हुए हैं। उनके काल के विषय में अनेक मत विद्वानों में प्रचलित थे परन्तु अब मुख्य रूप से दो ही मत हैं। एक मत के अनुसार, उन्हें प्रथम शताब्दी ईसापूर्व में विद्यमान, शकों को परास्त करके भारतीय

संस्कृति की रक्षा करने वाले और विजय के उपलक्ष्य में *विक्रम संवत्* को प्रचलित करने वाले *विक्रमादित्य* उपाधिधारी मालवप्रदेश के राजा का समकालीन बताया जाता है। दूसरे मत के अनुसार, उन्हें गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त *विक्रमादित्य* (373 से 413 ई०) का आश्रित कवि माना जाता है। अधिकतर विद्वान् दूसरे मत के समर्थक हैं। उनके स्थान के विषय में भी कोई उन्हें कश्मीर का, कोई बंगाल और कोई उज्जयिनी का निवासी मानते हैं।

कालिदास को अनेक ग्रन्थों का रचयिता माना जाता है, परन्तु उनमें से सात ग्रंथ ही कालिदास की प्रामाणिक कृतियों के रूप मे प्रसिद्ध हैं। **ऋतुसंहार** और **मेघदूत** दो *खंडकाव्य*, **कुमारसंभव** और **रघुवंश** दो *महाकाव्य* तथा **मालविकाग्निमित्र**, **विक्रमोर्वशीय** और **अभिज्ञानशाकुन्तल** ये तीन *नाटक* कालिदास की अमर कृतियां है।

ऋतुसंहार छः सर्गो का एक *लघु काव्य* है। यह कवि की युवावस्था की और प्रथम कृति जान पड़ता है। इस काव्य मे भारत मे आने वाली छः ऋतुओं का सुंदर चित्रण किया गया है। संभवतः षड्ऋतु-वर्णन की प्रेरणा कालिदास को वाल्मीकि की रामायण से मिली परन्तु यहाँ प्रकृति वाल्मीकि की भाँति आलंबनप्रधान न होकर उद्दीपनप्रधान है। अपनी प्रिया को संबोधित करके कवि ने छहों ऋतुओं का वर्णन किया है।

मेघदूत एक छोटा सा *खंडकाव्य* है जिनकी रचना *मन्दाक्रान्ता* छन्द मे हुई है। इसमें 121 पद्य हैं। यह दो भागों में विभक्त है : पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। एक यक्ष अपने कर्त्तव्यपालन मे प्रमाद के कारण अपने स्वामी कुबेर के द्वारा *अलकापुरी* से एक वर्ष के लिए निकाल दिए जाने पर अपनी प्रिया से वियुक्त होकर दक्षिण में *रामगिरि* पर्वत पर निवास करता है। आठ मास बीत जाने पर आषाढ़ मास के प्रथम दिन वह पर्वत की चोटी पर लगे हुए कृष्ण मेघ को देखता है। यह सोचकर कि यह मेघ उत्तर दिशा मे हिमालय की ओर जा रहा है वह मेघ से अपनी प्रिया के पास संदेश ले जाने के लिए प्रार्थना करता है। पूर्वमेघ में हिमालय तक के मार्ग और वहाँ मिलने वाले वनों, पर्वतों, नदियों, नगरों आदि का वर्णन करता है। तत्पश्चात् उत्तरमेघ मे हिमालय, अलकापुरी और अपने घर का वर्णन करता है। उसके बाद अपना प्रेमसंदेश मेघ को बताता है और अपनी प्रिया से प्रति-संदेश लाने के लिए प्रार्थना करता है।

कुमारसंम्भव 17 सर्गो का एक *महाकाव्य* है। अनुमान है कि कवि की मूलकृति में केवल आठ सर्ग थे। शेष 9 सर्ग किसी अज्ञातनामा कवि की कृति है। इस महाकाव्य पर *मल्लिनाथ* की टीका भी 8 सर्गो तक ही मिलती है। किंवदन्ती है कि अष्टम सर्ग के शिव-पार्वती संयोग-वर्णन से कालिदास को कुष्ठरोग हो गया और काव्य अधूरा ही रह गया। कुमारसंभव का कथानक

कदाचित् महाभारत के वनपर्व के *स्कन्दोत्पत्तिप्रकरण* से अनुप्राणित हुआ होगा। कवि ने शिव-पार्वती प्रणय की उस कथा मे आवश्यक परिवर्तन किए हैं। प्रथम सर्ग में हिमालय का वर्णन, तृतीय सर्ग में वसंत-वर्णन, चतुर्थ सर्ग में रति-विलाप और पाचवें सर्ग मे पार्वती-ब्रह्मचारि-संवाद कुमारसंभव के अत्यधिक मार्मिक स्थल है।

रघुवंश कालिदास का सर्वोत्कृष्ट *महाकाव्य* है। कुमारसंभव की अपेक्षा यह कवि की परिपक्व प्रतिभा का परिचायक है। इसमें 19 सर्ग हैं जिनमें *दिलीप* से लेकर *अग्निवर्ण* तक 29 राजाओं के चरित्र सामने आते हैं। इस काव्य में किसी एक नायक की इतिवृत्तात्मक कथा नहीं है, अपितु यह कई राजचरित्रों की एक मनोरम चित्रशाला है। कवि का मन रघु और *राम* के चित्रों में ही अधिक रमा है और उसने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से इन दो ही चित्रों को विविध वर्णों से रंजित करने का प्रयास किया है।

कालिदास की भाषा सरल, सरस और लालित्यपूर्ण है। उसकी शैली को हम *वैदर्भी* शैली कहते हैं। वास्तव में वैदर्भी शैली का परिमार्जन कालिदास ने ही किया है। तभी तो *दण्डी* ने कहा है—**तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्।** इस शैली के अनुसार भाषा में क्लिष्टता, प्रयाससाध्यता एवं कृत्रिमता सर्वथा हेय है। भाषा ऐसी ललित, स्वाभाविक और सरल होनी चाहिए कि सुनते ही कानों मे अमृत घोलकर अर्थबोध करा दे। मानवहृदय के भावों को व्यक्त करने का प्रकार भी कालिदास का अनोखा ही है। वे शब्दों की व्यंजना शक्ति पर अधिक बल देते हैं और अभिधाशक्ति पर कम। इसलिए इनके भाव सदा व्यंग्य ही रहते हैं, वाच्य नहीं होते। भावों की व्यंग्यता के साथ-साथ कवि उन्हें अपने ठोस और अखंड रूप में रखना ही पसंद करता है। वह उनकी तोड़मरोड़ नहीं करता। कालिदास के अलंकार भी स्वाभाविक रूप से आते हैं। कहीं कहीं *अनुप्रास* आदि शब्दालंकार भी हैं तो सही, किन्तु बहुत कम और वे भी अनायास ही आए हैं। बलात् अलंकारों को लादने की चेष्टा कवि ने कहीं नहीं की। उन्होंने अपनी कृतियों में अर्थालंकारों को अधिक महत्त्व दिया है, और उनमें भी विशेषतया *उपमा* को। इसी कारण से जगत् में इनकी **उपमा कालिदासस्य** यह प्रसिद्धि हुई है। कालिदास की उपमाएँ बड़ी स्वाभाविक, सरल और मार्मिक होती हैं। जिस बात को कहने के लिए बहुत शब्द-विस्तार अपेक्षित होता है, वह उनकी एक छोटी सी उपमा के द्वारा बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। चरित्र-चित्रण भी कालिदास का अनूठा है। नपे-तुले शब्दों में ही वे अपने पात्रो का व्यक्तित्व तत्क्षण पाठकों के मानस चक्षु के सामने खड़ा कर देते हैं। *भोलाशंकर व्यास* के शब्दों मे हम कह सकते हैं— "न तो वे भारवि की भाँति अर्थ के नारिकेल जल को चारदीवारी के भीतर

छिपाकर रखते हैं, न माघ की भाँति अलंकारों के मोह में ही फँसते हैं, न श्रीहर्ष की तरह कल्पना की दूर की कौड़ी ले आने में ही अपनी पाण्डित्यपूर्ण कलात्मकता का प्रदर्शन करते हैं। कालिदास का कवि हृदय का कवि है, मधुर आकृति का कवि है, आत्मा की सरसता का कवि है, जिसे किसी बाह्य अलंकृति की जरूरत नहीं। कालिदास की कला का एकमात्र प्रतिपाद्य—**किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्**—है।"

भारवि

अश्वघोष और कालिदास के पश्चात् महाकाव्यकारों में *भारवि* का ही नाम लिया जाता है। इनके काल और जीवन के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐहोल के शिलालेख (334 ई०) में कालिदास के साथ भारवि का नाम भी आया है—**स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित-कालिदासभारविकीर्तिः**। अतः भारवि के काल की निचली सीमा 634 ईसवी मानी जा सकती है। भारवि पर कालिदास की छाप स्पष्ट दिखाई देती है अतः भारवि कालिदास का परवर्ती है। इसलिए भारवि का काल 500 से 600 ई० के मध्य माना जा सकता है। बाह्य एवं अन्तः साक्ष्यों के आधार पर विद्वान् इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि भारवि दक्षिण भारत के निवासी थे तथा चालुक्यवंशी नरेश *विष्णुवर्धन* के सभापण्डित थे।

भारवि की कीर्ति उनके सुप्रसिद्ध महाकाव्य **किरातार्जुनीय** पर अवलम्बित है। महाकाव्य के सारे लक्षण इस महाकाव्य में उपलब्ध होते हैं। महाभारत के *वनपर्व* से लिया हुआ यह शुष्क कथानक भारवि की अमर तूलिका का स्पर्श पाकर भारवि को भी सदा के लिए अमर बना गया है। द्यूतक्रीड़ा में हार कर द्वैत वन में रहते हुए पाण्डव एक गुप्तचर द्वारा *दुर्योधन* के सुव्यवस्थित शासन का समाचार पाकर युद्ध की मंत्रणा करते हैं, किन्तु *युधिष्ठिर* प्रतिज्ञा-भंग करके युद्ध छेड़ने का विरोध करते है। महर्षि *वेदव्यास* के परामर्श से अर्जुन पाशु-पतास्त्र पाने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने जाते हैं। कठोर तपस्या के अन्त में अर्जुन किरातवेषधारी शिव से युद्ध करके उन्हें अपने साहस और बाहुबल से प्रसन्न कर उनसे दिव्यास्त्र पाशुपत प्राप्त करते हैं।

18 सर्गों में निबद्ध इस कथानक के बीच में ऋतुवर्णन, सूर्यास्तवर्णन एवं जलक्रीड़ा का भी मनोहारी वर्णन हुआ है। शब्दों में अर्थ का गौरव भरने में भारवि निष्णात हैं। **भारवेरर्थगौरवम्** इस उक्ति को चरितार्थस्वरूप यही महाकाव्य प्रमाण है। थोड़े से शब्दों में विपुल अर्थ की योजना केवल भारवि की ही कला है। वीर-रस-प्रधान इस महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में स्वयं कवि युधिष्ठिर द्वारा अर्थगाम्भीर्य की ही महत्ता बता रहे हैं—

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ।।

काव्य के कलापक्ष को अधिक निखारने वाले इस कवि ने छोटी किन्तु भावों से परिपूर्ण सूक्तियों से राजनीतिशास्त्र में जो निपुणता दिखाई वह सचमुच श्लाघनीय है ।

भारवि ने अपनी कविता कामिनी का नए-नए अलंकारों से शृंगार करने मे कोई कसर नहीं छोड़ी है। इसीलिए वे अलंकृत शैली के प्रवर्तक माने जाते हैं । भारवि की ही शैली का उनके बाद आने वाले अनेक कवियों ने अनुकरण किया है । किरातार्जुनीयम् को *बृहत्त्रयी* में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है ।

यद्यपि कहीं-कहीं इन का काव्य नारिकेल की भाँति कठिन हो गया है (**नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः**) तथापि वह चमत्कृतिपूर्ण है ।

माघ

माघ ने स्वयं अपने पिता, पितामह और पितामह के आश्रयदाता राजा का उल्लेख किया है । तदनुसार इनके पिता का नाम दत्तक, पितामह का नाम *सुप्रभदेव* और पितामह के आश्रयदाता का नाम *वर्मलात* था । बाह्य एवं आभ्यन्तर साक्ष्यों के आधार पर इनका काल सातवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में रखा जा सकता है । माघ के उत्तेजक विलास वर्णन से प्रतीत होता है कि वे धनाढ्य थे और उनका शैशव एवं यौवन विलासपूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ था । वे सम्भवतः श्रीमाली ब्राह्मण थे और राजस्थान के पार्वत्य प्रदेश डूंगरपुर-बांसवाड़ा के निवासी थे ।

माघ की कीर्तिलता केवल एक ही महाकाव्य **शिशुपालवध** रूपी वृक्ष पर अवलंबित है । इस महाकाव्य का कथानक **महाभारत** से लिया गया है । इसमें *कृष्ण* के द्वारा *युधिष्ठिर* के *राजसूय यज्ञ* में जाकर चेदि-नरेश *शिशुपाल* के वध का वर्णन है । महाभारत के इस लघु कथानक को माघ ने अपनी काव्य-प्रतिभा के द्वारा बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है । 20 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में रैवतक पर्वत का मनोहारी वर्णन और सुंदरियों के विविध विलासों का चित्रण संस्कृत साहित्य में अपना ही महत्त्व रखता है । प्रभात-वर्णन तो अपनी स्वाभाविकता एवं सरलता के कारण साहित्य संसार में अनुपम ही माना जाता है ।

माघ भारवि के परवर्ती थे । वे भारवि से सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं । कथावस्तु, उसकी सजावट, सर्गों के विभाजन और वर्ण्य-विषयों के चयन में माघ भारवि के पदानुयायी बन गए हैं । दोनों काव्य श्री शब्द से आरंभ

होते हैं। भारवि के काव्य का प्रत्येक **सर्ग लक्ष्मी** शब्द से समाप्त होता है, तो माघ ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में **श्री** शब्द का प्रयोग किया है। भारवि का अनुकरण करते हुये भी माघ काव्यकला में भारवि से इतने आगे निकल गये हैं कि भारवि के चित्र उनके आगे फीके दिखाई पड़ते है। किसी कवि की यह उक्ति अक्षरशः सत्य है—

तावद् भा भारवेर्भाति यावन् माघस्य नोदयः।

माघ के व्यक्तित्व में हमें कवि और पंडित दोनों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। पांडित्य मे माघ निश्चित रूप से *कालिदास, भारवि, भट्टि* और *श्रीहर्ष* से अधिक दिखाई पड़ते हैं। कालिदास मूलतः कवि है, भारवि राजनीति के व्यावहारिक ज्ञाता और भट्टि कोरे वैयाकरण। श्रीहर्ष का पांडित्य भी विशेषतः दर्शन मे अधिक जान पड़ता है। किन्तु माघ सर्वतंत्र स्वतंत्र पांडित्य लेकर उपस्थित होते हैं। वेद, व्याकरण, राजनीति, सांख्य, योग, बौद्ध-दर्शन, पुराण, अलंकार-शास्त्र, कामशास्त्र, संगीत, अश्वविद्या, हस्तिविद्या आदि के वे विशेष जानकार हैं। माघ का महत्त्व केवल पांडित्य के कारण ही नही अपितु काव्यप्रतिभा के कारण भी है। परन्तु इनकी काव्यप्रतिभा सर्वत्र पांडित्य के घटाटोप से ढकी दृष्टिगोचर होती है। पुराने पंडित इनकी पांडित्यपूर्ण काव्य-प्रतिभा से बहुत प्रसन्न थे और इसीलिए इनके विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

आधुनिक आलोचक माघ की इस पांडित्यपूर्ण काव्य शैली से अधिक संतुष्ट नहीं है। माघ का एकमात्र लक्ष्य अपने पूर्ववर्ती कवियों की नकल करना और उन्हें कलावादिता में पीछे छोड़ देना ही रहा है। यही कारण है कि पूर्व कवियों के गुणों के साथ-साथ उनके दोष भी माघ में कई गुना बढ़ गए है। श्लेष, यमक, चित्र-काव्य जैसी कृत्रिमताओं में माघ भारवि से भी बढ़े-चढ़े दिखाई देते हैं। अर्थालंकारो की दुरारूढ़ता में भी माघ किसी से कम नहीं हैं। माघ में नवीन शब्दावली का इतना आधिक्य है कि उसके विषय में यह उक्ति प्रचलित हो गई है **नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते** अर्थात् माघ के नौ सर्गो के पश्चात् नया शब्द नहीं रह जाता।

माघ सचमुच अपने युग के प्रभावशाली कवियों में प्रमुख थे। उनकी एकमात्र कृति **शिशुपालवध** आज भी *बृहत्त्रयी* में सम्मान का भाजन बनी हुई है।

भर्तृहरि

मुक्तक काव्य के क्षेत्र में भर्तृहरि का स्थान सबसे ऊँचा है। चीनी यात्री इत्सिंग ने अपनी यात्रा के वर्णन में भर्तृहरि का उल्लेख किया है, जिनके अनुसार उनकी मृत्यु 651 ई० में हुई थी। इत्सिंग ने लिखा है कि भर्तृहरि बौद्ध भिक्षु बन गए थे परन्तु सांसारिक सुखभोग के आकर्षण से फिर गृहस्थ हो गए। इस प्रकार वे सात बार भिक्षु और सात बार गृहस्थ बने। भारतीय परंपरा के अनुसार भर्तृहरि एक राजा थे और राजा के रूप में उन्होंने नीति पर सौ श्लोक लिखे थे जोकि **नीतिशतक** के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका एक वेश्या से प्रेम था। उसके प्रेम से प्रभावित होकर उन्होंने **श्रृंगारशतक** की रचना की। वेश्या ने राजा के प्रति अपने प्रेम में वफादारी का पालन नहीं किया, इसलिए राजा सब-कुछ छोड़कर वैरागी हो गये और **वैराग्यशतक** की रचना की।

भर्तृहरि के नाम से *वाक्यपदीय* नामक व्याकरणदर्शन का एक ग्रंथ भी प्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध में दो विचार आजकल विद्वत्समाज मे प्रचलित है। एक तो यह कि शतक-त्रय के रचयिता भर्तृहरि एवं वाक्यपदीय के रचयिता भर्तृहरि एक ही है, दूसरा यह कि वे भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं।

भर्तृहरि के शतकों में पद्यों की स्थिति और पाठ निश्चित-सा नहीं है। उनमें अनेक पद्य दूसरे कवियों की कृतियों में भी उपलब्ध होते है या अन्य सुभाषित ग्रन्थों में दूसरे कवियों के नाम से संगृहीत किये गये है। इसलिए यह भ्रम होता है कि भर्तृहरि भी कहीं *व्यास* और *चाणक्य* की तरह ऐसा नाम तो नहीं जिसके साथ अनेक सुन्दर श्लोकों का सग्रह कर दिया गया है, अथवा भर्तृहरि ने स्वयं दूसरे कवियों के सुन्दर श्लोकों का संग्रह अपने शतक-त्रय में कर लिया है परन्तु ऐसा विचार तथ्य पर आधारित नहीं, क्योंकि मुक्तक पद्यों में प्रक्षेप आदि की अधिक सम्भावना रहती है। अतः इन तीनों शतकों के रचयिता भर्तृहरि ही हैं।

भर्तृहरि के पद्य काव्य की दृष्टि से किसी भी अच्छे कवि के काव्य के प्रतिद्वन्द्वी होने मे समर्थ हैं। वे उत्तम काव्य के सभी गुणों से संपन्न है। विषय की दृष्टि से तो वे ज्ञान के भंडार हैं। कवि ने एक-एक पद्य मे इतना कुछ कह दिया है जितना कि अंग्रेजी के चौदह पंक्तियों के एक पद्य में कहना कठिन है।

नीतिशतक, श्रृंगारशतक और वैराग्यशतक वास्तव में भर्तृहरि की अमर कृतियाँ हैं। ये तीन सौ श्लोक लिखकर ही कवि सदा के लिए अमर हो गये हैं।

शङ्कराचार्य

तेलंग के अनुसार शंकर छठी शताब्दी के मध्य भाग में विद्यमान थे। *रामगोपाल भंडारकर* के अनुसार उनका जन्म 680 ईसवी में हुआ था। *मैक्समूलर* और *मेक्डानल* के अनुसार वे 788 से लेकर 820 ई० तक विद्यमान थे। प्रो० *कीथ* का भी यही मत है कि वे नवी शताब्दी के प्रारंभ में हुए थे। शंकर का जन्म *मलबार* के *कालडी* स्थान पर एक साधारण परन्तु विद्वान् नम्बूदिरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। कुछ विद्वानों का विचार है कि शंकर जन्म से शैव थे। दूसरों का मत है कि वे शाक्त थे। उनके गुरु का नाम *गोविन्द* था, जिससे उन्होंने अद्वैत दर्शन में योग्यता प्राप्त की। उन्होंने आठ वर्ष की अवस्था में ही वेदों और शास्त्रों का समस्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। छोटी अवस्था मे ही उन्होंने संसार को त्याग कर संन्यास ले लिया था। उन्होंने हिमालय से कन्याकुमारी तक समस्त देश का भ्रमण किया और सभी संप्रदायों के लोगों से शास्त्रार्थ किये। उन्होंने चार मठों की स्थापना की जिनमें से मुख्य कर्नाटक में *शृंगेरी* के स्थान पर है। दूसरा मठ पूर्व में पुरी में, तीसरा पश्चिम मे *द्वारका* में और चौथा उत्तर में *बद्रीनाथ* मे स्थापित किया गया। 32 वर्ष की अवस्था में *केदारनाथ* में उन्होंने अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया।

शंकर *अद्वैतदर्शन* के समर्थक थे। उन्होंने इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर प्रमुख 11 उपनिषदों, गीता और वेदान्तसूत्र पर भाष्य लिखे हैं। **उपदेशसाहस्री** और **विवेकचूडामणि** में उनकी सामान्य स्थिति की झलक मिलती है।

शंकर नाम असंख्य स्तोत्र रचनाओं के साथ जुड़ा हुआ है। यह संभव है कि इनमें से अनेक स्तोत्र शंकर के शिष्यों या अन्य लेखकों के हों और उन्हें शंकर के नाम के साथ जोड़ दिया गया हो। उनकी स्तोत्र रचनाओं में स्रग्धरा छन्द में **देव्यपराधक्षमानस्तोत्रम्, द्वादशपञ्जरिका** जो कि **मोहमुद्गर** के नाम से भी प्रसिद्ध है और **चर्पटपञ्जरिका** विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त लघुस्तोत्र रचनाएँ भी हैं जो कि **भुजङ्गप्रयात** छन्द में उपनिबद्ध हैं। इनमें **दशश्लोकी, आत्मषट्क** जिसे **निर्वाणषट्क** भी कहते है, **हस्तामलक, वेदसारशिवस्तुति,** बीस पद्यों मे शिखरिणी छंद में रचित **आनंदलहरी** विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। भावाभिव्यक्ति की सरलता और महनीयता के अतिरिक्त छंद की प्रवाहात्मकता, संगीतात्मकता और लय इन स्तोत्रों को कालिदास जैसे उच्च कवियों की कृतियों के समक्ष लाकर खड़ा कर देती हैं।

शंकर के व्यक्तित्व में हमें परस्परविरोधी गुणों का समन्वय देखने को मिलता है। जहाँ वे दार्शनिक हैं वहाँ वे कवि भी हैं, जहाँ वे पण्डित है वहाँ वे संत भी हैं, जहाँ वे साधक हैं वहाँ धर्मसुधारक भी हैं। डा० राधाकृष्णन् ने ठीक ही कहा है कि शंकर जैसी विश्वतोमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति संसार में थोड़े ही हुए हैं (There have been few minds more universal than his)।

श्रीहर्ष

महाकवि *श्रीहर्ष* ने अपना कुछ परिचय अपने महाकाव्य **नैषधीयचरितम्** के अंत में दिया है। इनके पिता का नाम *श्रीहरि* और माता का नाम *मामल्ल* देवी था। इन्हें काव्यशास्त्री आचार्य मम्मट का मामा भी बताया जाता है। श्रीहर्ष अलंकृत काव्यशैली की अंतिम अवस्था के एक उच्च कोटि के महाकवि थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता का स्वयं अपने इन शब्दों में परिचय दिया है—**ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्**। इससे सिद्ध होता है कि श्रीहर्ष कन्नौज के राजा जयचन्द की सभा में लब्धप्रतिष्ठ कवि थे। जयचन्द का राज्य काल 1139 से 1195 ई० है। अतः श्रीहर्ष का स्थिति काल 12वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित है।

श्रीहर्ष संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य महाकवियों में से हैं। श्रीहर्ष के प्रौढ़ पाण्डित्यपूर्ण काव्य ने विद्वत्समाज को यह कहने पर बाध्य कर दिया है कि **नैषधं विद्वदौषधम्**। नैषधीयचरित के अतिरिक्त श्रीहर्ष ने **खण्डनखण्डखाद्य**, **श्रीविजयप्रशस्ति** आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इन सभी रचनाओं के साथ इनका नैषधीयचरित संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है और उसे महाकाव्यों के वृहत्पञ्चक में स्थान प्राप्त हुआ है। कवि ने अपनी चमत्कृत शैली में महाभारत के *नलोपाख्यान* को अपने काव्य का कथानक बना कर और उस पर अपनी कल्पना का रंग चढ़ा कर जिस गाम्भीर्य से प्रस्तुत किया है उसे देखकर श्रीहर्ष की प्रतिभा की सराहना करनी पड़ती है। इस महाकाव्य में प्रकृति के विभिन्न उपादानों का सरस वर्णन, दमयन्ती का सौन्दर्य वर्णन आदि बहुत ही सुंदर बन पड़े हैं। कहीं यमक, श्लेष आदि अलंकारों की छटा देखने को मिलती है तो कहीं भंगीभणिति वक्रोक्ति शैली के दर्शन होते हैं। भाषा में पूर्ण प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है परन्तु कहीं-कहीं वह क्लिष्ट भी हो गई है। अतः उनकी कविता सुकुमार मति वाले लोगों के लिए न होकर केवल विदग्ध जनों को ही रसास्वादन करा सकती है। कवि का ध्यान भाषा के कला पक्ष की ओर अधिक गया है, भाव पक्ष उतना सबल नहीं बन पड़ा।

वास्तव मे श्रीहर्ष अपने युग के सच्चे कवि थे और उनकी कविता अपने युग का सही प्रतिनिधित्व करती है।

पण्डितराज जगन्नाथ

पण्डितराज जगन्नाथ एक तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पेरुभट्ट और माता का नाम लक्ष्मी था। ये मुगल सम्राट् *शाहजहाँ* के समसामयिक और दरबारी कवि थे। अतः इनका काल सरलता से 1650 ईसवी के लगभग रखा जा सकता है। ये शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र *दारा* के गुरु थे। इन्हीं के प्रभाव से दारा संस्कृत का विद्वान् बना और उसने उपनिषदों का अनुवाद फारसी भाषा मे किया।

पण्डितराज जगन्नाथ केवल महान् कवि ही नही थे, अपितु उच्चकोटि के काव्य-शास्त्री भी थे। **रसगङ्गाधर** इनका उच्चकोटि का काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ है। काव्य की एक नई और सुधरी हुई परिभाषा देते हुए उन्होंने लिखा है—**रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्** अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है।

इनकी काव्य-कृतियों में **भामिनीविलास** और **गङ्गालहरी** का उच्च स्थान है। वास्तव मे पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने काव्य ग्रंथों की रचना अपने काव्य शास्त्रीय ज्ञान को व्यवहृत करने के लिए की थी। उनका यह उद्देश्य उनके काव्यों मे स्पष्ट परिलक्षित होता है।

भामिनीविलास एक शृंगारिक काव्य-कृति है, किन्तु उसे पूर्णतया शृंगारिक कृति नहीं कहा जा सकता। यह चार भागों में विभक्त है। इसमें अन्योक्ति के 101 पद्य, शृंगार के 102, करुण के 19 और शान्त के 31 पद्य हैं। तथापि इस काव्य का झुकाव शृंगार और उपदेश की ओर है। यद्यपि यहाँ भाव-गाम्भीर्य और कल्पना का अभाव है, तथापि अनेक ऐसे पद्य उपलब्ध हैं जिनमे काव्य के उत्तम गुण देखे जा सकते हैं।

गंगालहरी एक स्त्रोत्र ग्रंथ है जोकि गंगा माता की स्तुति में लिखा गया है। इसमें कुल मिलाकर 52 पद्य हैं।

प्रथमस्तरङ्गः

वेदसुधा

(इस पाठ में ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के ऐसे मंत्रों का संग्रह किया गया है जिनसे वैदिक आर्यों के न केवल धार्मिक विश्वासों और सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है अपितु उच्च कोटि के काव्य का भी दिग्दर्शन होता है।

इस संग्रह में कुल मिलाकर दस मन्त्र हैं जिनमें पहले छः मन्त्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। पहले मंत्र में सविता देव से प्रार्थना की गई है कि वह बुराइयों को हमसे दूर कर दे और अच्छाइयाँ हमें प्राप्त करा दे। दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि सत् (परमेश्वर) एक है पर विद्वान् लोग उसे इन्द्र, मित्र आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। तीसरी में आँख, कान आदि इन्द्रियों और अङ्गों की पुष्टि और स्थिरता के साथ एक लंबी आयु जीने की कामना की गई है। चौथे मन्त्र में कहा गया है कि जो बाँट कर नहीं खाता वह पाप खाता है। पाँचवें और छठे मन्त्रों में भावनात्मक एकता की कामना की गई है।

7-9 ये तीन मन्त्र यजुर्वेद की *वाजसनेयि-संहिता* से उद्धृत हैं। आ ब्रह्मन् आदि मन्त्र छन्दोबद्ध नहीं हैं, किन्तु यह आधुनिक युग में लिखी गई किसी भी अतुकान्त कविता (blank verse) से होड़ ले सकते हैं। इनमें राष्ट्र के विभिन्न वर्गों, गो, अश्व आदि पशुओं, पुत्रवती वधुओं, वीर पुत्रों, इच्छानुसार मेघवृष्टि, समृद्ध फसलों और सर्वविध योगक्षेम की कामना की गई है। इसे यदि हम राष्ट्रीय गान कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

दशम मन्त्र अथर्ववेद से लिया गया है। इसमें भूमि की महिमा का वर्णन किया गया है।

ऋक् आदि संहिताओं का सस्वर उच्चारण होता है, इसलिए लिपिबद्ध होने पर वैदिक संहिताओं को स्वरांकित किया गया है। स्वर तीन हैं उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।)

विश्वानि देव सवितर्
दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥1॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुर्
अथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥2॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्
व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥3॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी ॥4॥

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥5॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥6॥

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी
महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वान्, आशुः सप्तिः,
पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य
यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ 7 ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 8 ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 9 ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो
यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्
सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥10॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

विश्वानि — विश्व, नपुं० द्वितीया, ब० व०, सर्वाणि=सब को

सवितः — सवितृ, सम्बोधन, ए० व०; हे सूर्य !

दुरितानि	पापानि=पापों को, विश्वानि विशेषण का विशेष्य। दुर्+√इण्+क्त; द्वितीया, ब० व० ।
परासुव	परा+√सू 'प्रेरित करना' लोट्, म० पु०, ए० व० दूरे प्रेरय=दूर हटा दे, परे कर दे ।
दिव्य:	दिवि भवः; आकाश में स्थित ।
सुपर्ण:	शोभनानि पर्णानि यस्य सः=सुन्दर पक्षों वाला ।
गरुत्मान्	गरुत्मत्, प्रथमा, ए० व०; पक्षी, गरुड, सूर्य । गरुत् पुं=पक्ष । गरुत्+मतुप् ।
विप्रा:	मेधाविनः; बुद्धिमान्, ब० व० ।
मातरिश्वानम्	मातरिश्वन्, द्वितीया, ए० व०; वायु को । मातरि अन्तरिक्षे श्वयति गच्छतीति, तम् ।
कर्णेभि:	कर्णैः; कानों से, (वैदिक प्रयोग) ।
अक्षभि:	अक्षन्, तृतीया, ब०व०, अक्षिभिः; आँखों से ।
यजत्रा:	यष्टव्याः, पूजनीयाः, हे पूजनीय (देवो) ।
तुष्टुवांस:	√स्तु+वस् (क्वसु)=तुष्टुवस्, प्रथमा, ब० व०, स्तुवन्तः; स्तुति करते हुए।
व्यशेम	वि+√अश् 'प्राप्त करना' व्युश्नुवीमहि, प्राप्नुयाम; प्राप्त करें । छान्दस प्रयोग ।
देवहितम्	देवेन हितम् (तृ०तत्पु०) प्रजापतिना स्थापितम्, विहितम्, प्रजापति के द्वारा निश्चित ।
मोघम्	व्यर्थम् ।
अप्रचेता:	अप्रचेतस्, प्रथमा, ए०व०, अप्रकृष्टज्ञानः; अज्ञानी ।
वध:	मृत्युः, मौत ।
इत्	एव, ही ।
केवलाघ:	केवलपापवान्, केवल पाप भागी ।
केवलादी	केवलम् असाक्षिकम् अन्नं भुञ्जानः, केवल एककः सन् अत्तीति; अकेला भोजन करने वाला ।
सं गच्छध्वम्	संगताः समवेताः भवत; सम् उपसर्ग पूर्वक+√गम्, आत्मनेपद; संगठित हो जाओ ।

सं वदध्वम्	सह वदत; मिल कर बोलो। एक दूसरे के अनुकूल (अनुमत) बात को कहो।
सं जानताम्	सम् √ज्ञा, लोट्, प्र०पु०, ब०व०; सम् उपसर्ग पूर्वक √ज्ञा आत्मनेपद, समान विचार वाले हों।
संजानानाः	सम् √ज्ञा+शानच्, प्रथमा, ब०व०, ऐकमत्यं प्राप्ताः; समान विचार वाले होकर, विमति को त्याग कर।
उपासते	उप √आस्, लट्, प्र०पु०, ब०व०, स्वीकुर्वन्ति, अपनाते हैं।
मन्त्रः	स्तुतिः गुप्तभाषणं वा; स्तुति अथवा गुप्त बातचीत।
समितिः	प्राप्तिः सङ्गतिः वा; प्राप्ति अथवा परिषद्।
आ जायताम्	आ √जन्, लोट्, म०पु०, ए०व०।
अतिव्याधी	अति √व्यध् 'बींधना', बींध डालने वाला। बाणविद्या में निपुण।
सप्तिः	अश्वः; घोड़ा।
पुरन्धिः	दानशीला, उदारा, पुत्रवती।
निकामे निकामे	यथाकामम्; इच्छानुसार।
योगक्षेमः	योग और क्षेम, अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा, अथवा सम्यक् निर्वाह।
उदेति	उद् √इ 'गतौ'; उद्गच्छति; चला जाता है।
दैवम्	दीव्यति इति देवः, तत्र भवं दैवम्; आत्मग्राहकम्; आत्मा का ज्ञान कराने वाला।
दूरंगमम्	दूरं गम्+अ (खश्), दूरात् गच्छति; दूर तक जाने वाला।
शिवसङ्कल्पम्	शिवः कल्याणकारी सङ्कल्पः यस्य तत्; कल्याणकारी विचारों वाला।
सुषारथिः	शोभनः सारथिः; अच्छा सारथि। लोक में सुसारथि।
नेनीयते	√नी, यङ्, लट्, प्र०पु०, ए०व०, अत्यर्थम् इतस्ततो नयति; निरन्तर इधर-उधर ले जाता है।
कृष्टयः	कृषयः; खेतियाँ।
जिन्वति	√जिन्व्, लट्, प्र०पु०, ए०व०; जीता है।
प्राणत्	प्र√अन्+अत् (शतृ) नपुं०, द्वितीया, ए०व०; साँस लेते हुए को।
एजत्	√एज्+शतृ; गति करते हुए को।

अभ्यासः

1. **लघूत्तराणि लिखत—**

क. सविता कानि दूरीकरोतु ?
ख. धेनुः कीदृशी भवतु ?
ग. मनः मनुष्यान् कथं नेनीयते ?
घ. भूमिः कानि कानि दधातु ?

2. **निम्नलिखितानां मन्त्रवाक्यानाम् आशयं स्पष्टीकुरुत—**

क. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।
ख. केवलाघो भवति केवलादी।
ग. योगक्षेमो नः कल्पताम्।
घ. तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

3. **कोष्ठादुचितपदम् आदाय रिक्तस्थानानि पूरयत—**

क. सं वो — जानताम्। (मनांसि, मनसि)
ख. समानेन वो — जुहोमि। (हविषा, अन्नेन)
ग. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो — जायताम्। (ब्रह्मवर्चसी, ब्रह्मचारी)
घ. यजमानस्य — जायताम्। (वीरो, धीरो)

4. **पाठे समागतानां वेदमन्त्राणां भावार्थं संक्षिप्य दशवाक्येषु लिखत।**

द्वितीयस्तरङ्गः

उपनिषद्वचनामृतम्

(इस पाठ में ईश, कठ, मुण्डक, श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों से ऐसे मंत्रों का संग्रह किया गया है जिनमें ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया गया है। पद्य भाषा और भाव की दृष्टि से उत्तम हैं।)

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥1॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥2॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥3॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्-
न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥4॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्
एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्-
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥5॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥6॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि
तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ॥7॥

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥8॥

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥9॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैः तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्-
ततस्तु तं पश्यते ध्यायमानः ॥10॥

तं विश्वरूपं परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्-
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥11॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥12॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्-
तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म
तदापस्तत् प्रजापतिः ॥13॥

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स श्रृणोम्यकर्णः।
अहं विजानामि विविक्तरूपो
न चास्ति वेत्ता मम चित् सदाहम् ॥14॥

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यः
वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशः
न जन्मदेहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥15॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामारूपाद् विमुक्तः
परात् परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥16॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

ईशा	ईश्, तृतीया, ए०व०, ब्रह्मणा; ईश्वर के द्वारा, ब्रह्म के द्वारा ।
वास्यम्	आच्छादनीयम्; आच्छादन के योग्य है, व्याप्य है ।
त्यक्तेन	त्यागेन इत्यर्थः; त्याग के द्वारा ।
जिजीविषेत्	जीवितुम् इच्छेत्; जीने की इच्छा करे ।
समाः	समा (स्त्री०), द्वितीया, ब०व०, संवत्सरान्; वर्षों तक ।
कर्म न लिप्यते	कर्मणा न लिप्यते इत्यर्थः; कर्म से लिप्त नहीं होता ।
सर्वभूतान्तरात्मा	सर्वेषां भूतानाम् अभ्यन्तरः आत्मा; सब प्राणियों के अंदर स्थित आत्मा, ब्रह्म ।
नित्यः	अविनाशी ।
विदधाति	प्रयच्छति, पूरयति; पूर्ण करता है ।
तत्र	तस्मिन् स्वात्मभूते ब्रह्मणि; उस अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म में ।
चन्द्रतारकम्	चन्द्रः च तारकाणि च (समा० द्वन्द्व); चाँद और तारे ।
ऊर्णनाभिः	लूता; मकड़ी ।
गृह्णते	गृह्णीते, गृह्णाति, ग्रहण करता है; अंदर समा लेता है ।
सम्भवन्ति	प्रभवन्ति; उत्पन्न होती हैं ।
सतः	अस्+अत् (शतृ), पञ्चमी, ए० व०, विद्यमानात्, जीवतः, जीवित से ।
विश्वम्	समस्तम् (जगत्); सारे जगत् को ।
विततः	विस्तीर्णः; विस्तृत ।
आप्तकामाः	पूर्णकामाः, विगततृष्णाः; तृष्णारहित ।
आक्रमन्ति	आक्रामन्ति, गच्छन्ति; जाते हैं ।

बृहत्	महत्; महान्।
अचिन्त्यरूपम्	न चिन्तयितुं शक्यते रूपम् यस्य, तत्; जिसके रूप की कल्पना नहीं की जा सकती।
देवैः	इन्द्रियैः; इन्द्रियों के द्वारा।
विशुद्धसत्त्वः	विशुद्धान्तःकरणः; विशुद्ध अन्तःकरण वाला।
ध्यायमानः	ध्यायन्, चिन्तयन्; चिन्तन करता हुआ।
विश्वरूपम्	विश्वानि सर्वाणि रूपाणि यस्य, तम्; सब रूप वाले को।
ईड्यम्	स्तुत्यम्; स्तुति के योग्य।
कर्माध्यक्षः	कर्मणाम् अध्यक्षः प्रेक्षकः; सब कर्मों को देखने वाला।
सर्वभूताधिवासः	सर्वाणि भूतानि अधिवसति इति; सब प्राणियों में निवास करने वाला।
चेता	√चित्+असुन्=चेतस्। प्रथमा, ए०व० में चेताः रूप सिद्ध होता है, परन्तु यहाँ चेता पाठ है। या तो यहाँ विसर्ग का आर्ष लोप है, अथवा धातुओं के नानार्थक होने से √चि+तृ (तृन्) से चेता=जानने वाला समझना चाहिए।
निर्गुणः	निर्गताः गुणाः यस्मात् सः; गुणों से परे।
शुक्रम्	शुभ्रम्; पवित्रम्।
अपाणिपादः	पाणी च पादौ च पाणिपादम् (समाहार द्वन्द्व)। अविद्यमानं पाणिपादं यस्य सः; हाथों और पाँवों से रहित।
विविक्तरूपः	एकरूपः; एक रूप वाला।
नामरूपात्	नाम च रूपं च नामरूपम् (समाहार द्वन्द्व), तस्मात्; नाम और रूप से।
उपैति	प्राप्नोति; प्राप्त होता है।

अभ्यासः

1. लघूत्तराणि त्रिभिरेव वाक्यैः लिखत—

क. सर्वभूतान्तरात्मा कथं विभाति ?

ख. सर्वभूतान्तरात्मा लोकदुःखेन न लिप्यते—अत्र का उपमा ?

ग. केषां धीराणां शान्तिः शाश्वती ?

घ. ध्यायमानः केन तं (ईश्वरं) पश्यति ? कैश्च न पश्यते ?

ङ. कीदृशं देवं विदाम ?

च. सर्वभूतान्तरात्मा कीदृशः ?

छ. सूर्यः कं न प्रकाशयितुं शक्नोति ?

ज. विद्वान् कथं दिव्यम् उपैति ?

2. भावार्थं स्पष्टीकुरुत—

क. तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।

ख. तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ।

ग. अहं विजानामि विविक्तरूपः ।

घ. वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् ।

3. पङ्क्ति पूरयत—

क. कुर्वन्नेवेह .... ।

ख. सत्यमेव जयते ...... देवयानः ।

ग. दूरात् सुदूरे ...... गुहायाम् ।

4. अधोलिखितेषु पदेषु चत्वारः सन्धिविच्छेदाः विहिताः, तेषु शुद्धं सन्धिविच्छेदं रेखाङ्कितं कुरुत—

क. कुर्वन्नेवेह—
(i) कुर्वन्+इव+इह
(ii) कुर्वन्+नेव+एह
(iii) कुर्वन्+एव+इह
(iv) कुर्वन्+ऐव+इह

ख. नान्यथेतोऽस्ति—
(i) न+अन्यथा+इतः+अस्ति
(ii) न+अन्यथा+एतः+अस्ति
(iii) न+अन्यथा+ऐतः+अस्ति
(iv) न+अन्यथा+ईतः+अस्ति

ग. येनाक्रमन्त्यृषयः—

(i) येन + अक्रमन्ति + ऋषयः
(ii) येन + आक्रमन्ति + ऋषयः
(iii) येन + अक्रमन्ति + यर्षयः
(iv) येन + आक्रमन्ति + अर्षयः

घ. भुवनेशमीड्यम्—

(i) भुवन + ईशम् + ईड्यम्
(ii) भुवने + शम् + ईड्यम्
(iii) भु + वनेशम् + ईड्यम्
(iv) भुवन + एशम् + ईड्यम्

5. **सनामनिर्देशं समासानां विग्रहः क्रियताम्—**

चन्द्रतारकम्, विशुद्धसत्त्वः, भुवनेशम्, अचिन्त्यशक्तिः, केशलोमानि ।

6. **प्रकृति-प्रत्ययौ निर्दिशत—**

प्रविष्टः, निहितम्, ईड्यम्, विहाय, ध्यायमानः ।

तृतीयस्तरङ्गः

वर्षा ऋतुः

(वर्षा ऋतु का यह अनुपम वर्णन वाल्मीकीय रामायण के *किष्किन्धा* काण्ड से लिया गया है। सीताहरण के पश्चात् राम और लक्ष्मण उन्हें ढूंढते-ढूंढते माल्यवान् पर्वत पर पहुँचते हैं। वहाँ उनकी भेंट हनुमान से होती है। हनुमान् उनकी मित्रता सुग्रीव से करा देते हैं। राम सुग्रीव के भाई *वाली* को मारकर उसका (सुग्रीव का) राज्य उसे वापस दिला देते हैं। इसी बीच वर्षा ऋतु का आरंभ हो जाता है। राम भावविभोर हो लक्ष्मण को संबोधित कर उस (वर्षा ऋतु) का वर्णन करते हैं।

वाल्मीकिकृत यह वर्षा वर्णन समस्त संस्कृत साहित्य में अनुपम है।)

स तथा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च।
वसन् माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥1॥

अयं स कालः संप्राप्तः समयोऽद्य जलागमः।
संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसंनिभैः ॥2॥

शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपङ्क्तिभिः।
कुटजार्जुनमालाभिरलङ्कर्तुं दिवाकरः ॥3॥

एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसन्तप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ।।4।।

एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरधिवासितः ।
सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ।।5।।

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ।।6।।

कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ।
अन्तःस्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम् ।।7।।

नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ।।8।।

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुर्-
निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ।।9।।

क्वचित् प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।
क्वचित् क्वचित् पर्वतसंनिरुद्धं
रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य ।।10।।

रसाकुलं षट्पदसंनिकाशं
प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूतं
भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ।।11।।

समुद्वहन्तः सलिलातिभारं
बलाकिनो वारिधरा नदन्तः ।
महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां
विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ।।12।।

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गाः ।।13।।

प्रहर्षिताः केतकपुष्पगन्ध—
माघ्राय हृष्टा वननिर्झरेषु।
प्रपातशब्दाकुलिता गजेन्द्राः
सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति ।।14।।

धारानिपातैरभिहन्यमानाः
कदम्बशाखासु विलम्बमानाः।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं
शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति ।।15।।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

मेघसोपानपङ्क्तिभिः — मेघा एव सोपानानि तेषां पङ्क्तिभिः; मेघ रूपी सीढ़ियों से।

कुटजार्जुनमालाभिः — कुटजार्जुनानां वार्षिकपुष्पाणां मालाभिः; कुटज और अर्जुन नामक वर्षाकालीन पुष्पों की मालाओं से।

घर्मपरिक्लिष्टा — घर्मेण ग्रीष्मसन्तापेन, (सीतापक्षे) विरहतापेन परिक्लिष्टा संतप्ता; गरमी के ताप से, (सीता के पक्ष में) विरह के ताप से सन्तप्त।

फुल्लार्जुनः — फुल्लाः पुष्पिताः अर्जुनाः यस्मिन् (ब०व्री०); फूले हुए अर्जुन वृक्षों वाला।

अधिवासतः — वासितः, सुरभितः; सुगन्धित।

शान्तारिः — शान्तः अरिः यस्य सः; नष्ट हुए शत्रु वाला, सुग्रीव का शत्रु वाली नष्ट हो गया है और पर्वत का शत्रु दावानल शान्त हो गया है।

मेघकृष्णाजिनधराः	मेघाः एवं कृष्णाजिनानि तेषां धराः; मेघ रूपी मृगछालाओं के धारण करने वाले।
प्राधीताः	अध्येतुम् प्रक्रान्ताः, प्रारब्धाध्ययनाः; अध्ययन में लग रहे।
	इस श्लोक में पर्वतों को मेघ रूपी मृगछाला को धारण करने वाले, जलधारा रूपी यज्ञोपवीत को पहनने वाले और हवा से भरी (गूंजने वाली) गुफाओं वाले, मानों वेदोच्चारण करने वाले ब्रह्मचारियों के रूप में प्रदर्शित किया गया है।
निदाघदोषप्रसराः	निदाघस्य ग्रीष्मस्य दोषाणां प्रसराः; ग्रीष्मकाल के दोषों के विस्तार।
प्रकीर्णाम्बुधरम्	प्रकीर्णाः अम्बुधरा मेघाः यस्मिन्, तत्; बिखरे हुए मेघों वाला।
शान्तमहार्णवस्य	निस्तरङ्गसमुद्रस्य; तरंगों से रहित समुद्र का।
रसाकुलम्	रसेन पूर्णम्; रस से भरा हुआ।
षट्पदसंनिकाशम्	भ्रमरसदृशम्; भौंरे के समान (काला)। यह अस्वपदविग्रह नित्य समास है।
प्रकामम्	यथेच्छम्; जी भर कर।
प्लवङ्गाः	वानराः; बन्दर।
आकुलिताः	व्याकुलाः।
पुष्परसावगाढम्	पुष्पाणां रसेन अवगाढम् वृद्धम्; फूलों के रस से बढ़े हुए (मद) को।
षट्चरणाः	भ्रमराः भृङ्गाः, भौंरे।

अभ्यासः

1. उत्तराणि दीयन्ताम्—

क. सुग्रीवाभिषेकानन्तरं रामः कुत्र अवसत् ?

ख. जलागमे नभः कैः संवृतम् आसीत् ?

ग. मही कस्या इव बाष्पं विमुञ्चति ?

घ. पर्वताः कथं प्राधीता इव प्रतिभान्ति ?

ङ. सवेदनमिवाम्बरम्—इति वचने कवेः कः आशयः ?

च. वर्षर्तौ केषां यात्राः स्थिताः भवन्ति ?

छ. नभः शान्तमहार्णवस्य रूपं कथं धारयति ?

2. **रिक्तस्थानानि पूरयत—**

क. रसाकुलम् ....
....प्रकामम् ।

ख. वहन्ति वर्षन्ति ....
....समाश्वसन्ति ।

ग. प्रपातशब्दाकुलिता ....
....नदन्ति ।

घ. धारानिपातैः ....
....विलम्बमानाः ।

3. **वर्षर्तुवर्णनान्तर्गतं नभोवर्णनं स्वशब्दैः कुरुत ।**

4. **अधोलिखितेषु सन्धिविच्छेदः क्रियताम्—**

सुग्रीव इव, सीतेव, केतकैरधिवासितः, कशाभिरिव, पतत्याम्रफलम् ।

5. **अधः एकस्मिन् भागे समासविग्रहो विहितः अस्ति, अपरस्मिन् भागे समस्त-पदानि लिखत—**

नवेन वारिणा परिप्लुता । ....

नीलं मेघं आश्रिता । ....

शान्तः चासौ महार्णवश्च । ....

प्रियया विहीनाः । ....

षट् चरणाः येषां ते । ....

6 **अधोलिखितैः पदैः सरलवाक्यानि विरच्यन्ताम्—**

क्वचित्, विश्रम्य, मुदिताः, यथा, विहाय, सार्द्धम्, शनैः ।

चतुर्थस्तरङ्गः

यक्ष-युधिष्ठिर-संवादः

(यह अंश महाभारत के वन पर्व से लिया गया है। एक बार पाँचों पाण्डव वन में थे। उन्हें प्यास लगी। *युधिष्ठिर* ने *नकुल* को जल लाने के लिए भेजा। नकुल एक जलाशय पर गया और पानी पीने लगा। अन्तरिक्ष से एक आवाज़ आयी—'रुको, मेरे कुछ प्रश्न हैं। पहले उनके उत्तर दो। तत्पश्चात् पानी पीना और अपने भाइयों के लिए ले जाना।' नकुल बहुत प्यासा था। उसने इसकी कुछ परवाह न की और पानी पीने लगा। पानी पीते ही वह वहीं गिर पड़ा। काफी देर तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् युधिष्ठिर ने *सहदेव* को नकुल का पता लगाने और पानी लाने के लिए भेजा। वह भी उसी जलाशय पर गया और अपने भाई की तरह आकाशवाणी की परवाह किये बिना पानी पीने लगा। वह भी पानी पीते ही वहीं अचेत लेट गया। उसके पश्चात् अर्जुन और भीम आये और उनकी भी वही दशा हुई। जब कोई भी न लौटा तो युधिष्ठिर स्वयं उस तालाब पर आये और अपने भाइयों की दशा देख कर मन में अत्यन्त दुःखी हुये। प्यास अधिक होने के कारण उन्होंने पानी पीना चाहा। उसी समय अन्तरिक्ष से आवाज़ आयी—'मैं शैवल और मत्स्य खाने वाला बक हूँ। मैंने ही तेरे भाइयों को मौत के घाट उतारा है। यदि तू मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं देगा तो तेरी भी यही दशा होगी। मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर तुम पानी पी सकते हो और ले जा सकते हो।' युधिष्ठिर रुक गये और उन्होंने पूछा—

"सच बताओ, तुम कौन हो ? तुम कोई महान् प्राणी प्रतीत होते हो। तुम कोई साधारण पक्षी नहीं हो सकते।" एक महाकाय और विरूपाक्ष यक्ष आकर युधिष्ठिर के सामने उपस्थित हो गया और अपने प्रश्नों के उत्तर के लिए आग्रह करने लगा। युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा—"तुम प्रश्न करो, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनका उत्तर दूंगा।" इस पाठ में यक्ष और युधिष्ठिर के वे ही प्रश्न और उत्तर संकलित किये गये हैं।)

यक्षः किंस्विद् गुरुतरं भूमेः किंस्विदुच्चतरं च खात्।
किंस्विच्छीघ्रतरं वायोः किंस्विद् बहुतरं तृणात् ॥1॥

युधिष्ठिरः माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात् ॥2॥

यक्षः किंस्वित् प्रवसतो मित्रं किंस्विन् मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य च किं मित्रं किंस्विन् मित्रं मरिष्यतः ॥3॥

युधिष्ठिरः सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः ॥4॥

यक्षः किंस्विदेकपदं धर्म्यं किंस्विदेकपदं यशः।
किंस्विदेकपदं स्वर्ग्यं किंस्विदेकपदं सुखम् ॥5॥

युधिष्ठिरः दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम् ॥6॥

यक्षः धन्यानामुत्तमं किंस्विद् धनानां स्यात् किमुत्तमम्।
लाभानामुत्तमं किं स्यात् सुखानां स्यात् किमुत्तमम् ॥7॥

युधिष्ठिरः धन्यानामुत्तमम् दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम्।
लाभानां श्रेय आरोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा ॥8॥

यक्षः कश्च धर्मः परो लोके कश्च धर्मः सदाफलः।
किं नियम्य न शोचन्ति कैश्च सन्धिर्न जीर्यते ॥9॥

युधिष्ठिरः आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयीधर्मः सदाफलः।
मनो यम्य न शोचन्ति सन्धिः सद्भिर्न जीर्यते ॥10॥

यक्षः किं नु हित्वा प्रियो भवति
किं नु हित्वा न शोचति ।
किं नु हित्वाऽर्थवान् भवति
किं नु हित्वा सुखी भवेत् ।।11।।

युधिष्ठिरः मानं हित्वा प्रियो भवति
क्रोधं हित्वा न शोचति ।
कामं हित्वाऽर्थवान् भवति
लोभं हित्वा सुखी भवेत् ।।12।।

यक्षः किमर्थं ब्राह्मणे दानं किमर्थं नटनर्तके ।
किमर्थं चैव भृत्येषु किमर्थं चैव राजसु ।।13।।

युधिष्ठिरः धर्मार्थं ब्राह्मणे दानं यशोऽर्थं नटनर्तके ।
भृत्येषु भरणार्थं वै भयार्थं वै च राजसु ।।14।।

यक्षः मृतः कथं स्यात् पुरुषः कथं राष्ट्रं मृतं भवेत् ।
श्राद्धं मृतं कथं वा स्यात् कथं यज्ञो मृतो भवेत् ।।15।।

युधिष्ठिरः मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम् ।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ।।16।।

यक्षः कः शत्रुर्दुर्जयः पुंसां कश्च व्याधिरनन्तकः ।
कीदृशश्च स्मृतः साधुरसाधुः कीदृशः स्मृतः ।।17।।

युधिष्ठिरः क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुः लोभो व्याधिरनन्तकः ।
सर्वभूतहितः साधुरसाधुर्निर्दयः स्मृतः ।।18।।

यक्षः किं स्थैर्यमृषिभिः प्रोक्तं किं च धैर्यमुदाहृतम् ।
स्नानं च किं परं प्रोक्तं दानं च किमिहोच्यते ।।19।।

युधिष्ठिरः स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्यं धैर्यमिन्द्रियनिग्रहः ।
स्नानं मनोमलत्यागो दानं वै भूतरक्षणम् ।।20।।

यक्षः को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्थाः का च वार्त्तिका ।
ममैतांश्चतुरः प्रश्नान् कथयित्वा जलं पिब ।।21।।

युधिष्ठिरः पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥22॥

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥23॥

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥24॥

अस्मिन् महामोहमये कटाहे
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तु दर्वीपरिघट्टनेन
भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥25॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

खात्	आकाशात्; आकाश से।
प्रवसतः	विदेशं गच्छतः; विदेश जाते हुये के।
मरिष्यतः	√मृ, लृट्, शतृ, प्रथमा, ए० व०, मुमूर्षोः, मरने वाले का।
सार्थः	सरतीति सार्थः। यात्रायां व्यवसायिनाम् अन्येषां वा जनानां समूहः; यात्रा में व्यापारियों या अन्य व्यक्तियों का समुदाय, काफिला।
एकपदम्	एकपदवाच्यम्, संक्षेपेण उदाहार्यम्; संक्षेप में।
धर्म्यम्	धर्मादनपेतम्; धर्मयुक्त।
स्वर्ग्यम्	स्वर्गाय हितम्।
धन्यम्	धनं लब्धा, धन प्राप्त करने वाला (मुख्यार्थ)। कृतार्थ, कृतकृत्य (गौणार्थ)।

तुष्टिः	सन्तोषः; संतोष ।
सदाफलः	नियम से फलप्रद, हमेशा फल देनेवाला ।
आनृशंस्यम्	दया । 'नृशंस' क्रूर (घातक) को कहते हैं ।
हित्वा	√हा 'छोड़ना' + त्वा (क्त्वा); छोड़कर, त्यागकर ।
यशोऽर्थम्	यशसे, यश के लिये । चतुर्थी (नित्य) समास ।
भरणार्थम्	भरणाय; भरणपोषण के लिये । चतुर्थी (नित्य) समास ।
भयार्थम्	भयस्य कारणात्; भय के कारण से ।
राष्ट्रम्	राज्यम्; राज्य ।
अनन्तकः	अनन्तः; अन्त न होने वाला ।
व्याधिः	रोगः; बीमारी, रोग ।
भूतरक्षणम्	भूतानां प्राणिनां रक्षणम्; प्राणियों की रक्षा ।
अनृणी	न ऋणी, ऋणमुक्त ।
अप्रवासी	स्वगृहे वासी; अपने घर या देश मे निवास करने वाला।
वारिचर	संबो०, ए० व०, वारिणि चरति इति; जल मे विचरण करने वाले, यक्ष ।
वार्ता	उदन्तः, वृत्तान्तः; समाचार, ज्ञान की बात ।
सूर्याग्निना	सूर्यः एवाग्निः (मयूरव्यंसकादितत्पुरुषः) तेन; सूर्य-रूपी अग्नि के द्वारा ।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन	मासाः च ऋतवः च मासर्तवः, ते एव दर्वी, तस्याः परिघट्टनेन चालनेन; मास और ऋतु रूपी करछुल को चलाने से ।

अभ्यासः

1. पद्यानि पूरयत—

क. माता गुरुतरा ....

.... तृणात् ।

ख. आनृशंस्यं..
....जीर्यते ।

ग. मानं हित्वा..
....सुखी भवेत् ।

घ. अहन्यहनि..
....परम् ।

2. **अधोलिखितेषु बहुविकल्पेषु उचितविकल्पं सूचयत—**

क. पुंसां सुदुर्जयः शत्रुः कः ? (रोगः, सिंहः, क्रोधः)

ख. कः साधुः ? (भिक्षारतः, परोपदेशकुशलः, सर्वभूतहितः)

ग. दानं किमुच्यते ? (भोजनम्, भूतरक्षणम्, दक्षिणा)

घ. चिन्ता कस्मात् बहुतरी ? (स्वर्णात्, रजतात्, तृणात्)

ङ. कं हित्वा अर्थवान् भवति ? (मानम्, कामम्, क्रोधम्)

च. राजसु किमर्थं दानम् ? (धर्मार्थम्, कामार्थम्, भयार्थम्)

3. **स्तम्भद्वयगत-शब्दार्थयोः मेलनं कुरुत—**

(i) खात्	विदेशगतस्य
(ii) प्रवसतः	रुग्णस्य
(iii) आतुरस्य	आकाशात्
(iv) भिषक्	महापुरुषैः
(v) अर्थवान्	नियन्त्र्य
(vi) यम्य	वैद्यः
(vii) सद्भिः	धनवान्

4. **उत्तराणि लिखत—**

क. कः मोदते ?

ख. परम् आश्चर्यं किम् ?

ग. कः पन्थाः ?

घ. का वार्ता ?

5. सन्धिः विधीयताम् —

(i) किस्वित्+शीघ्रतरम् = ...

(ii) भिषक्+मित्रम् = ...

(iii) तुष्टिः+उत्तमा = ...

(iv) यज्ञः+तु+अदक्षिणः = ...

(v) मम+एतान्+चतुरः = ...

(vi) अहनि+अहनि = ...

6. स्तम्भद्वयगत समस्तपदानि तदुचित-नामभिः संयोजयत—

(i) अदक्षिणः	बहुव्रीहिः ।
(ii) निर्दयः	तत्पुरुषः ।
(iii) इन्द्रियनिग्रहः	नञ् ।
(iv) महाजनः	द्वन्द्वः ।
(v) मनोमलत्यागः	कर्मधारयः ।
(vi) सूर्याग्निः	तत्पुरुषः ।

7. अधोलिखितेषु पदेषु लिङ्गविभक्तिवचनानि निर्दिशत—

मरिष्यतः, तुष्टिः अहनि, श्रुतयः, अनृणी ।

पञ्चमस्तरङ्गः

नन्दस्य विवेकः

(*निम्नांकित श्लोक महाकवि अश्वघोष विरचित महाकाव्य सौन्दरनन्दम् के द्वादशः सर्ग से लिये गये हैं।* अपनी पत्नी सुन्दरी में नितांत अनुरक्त सौतेले भाई नन्द को अपनी इच्छा के विरुद्ध बौद्धधर्म में दीक्षित कर भिक्षु बना देते हैं। घर से नन्द भाग जाना चाहता है। संसार की नश्वरता का उपदेश बुद्ध से सुनकर उसके मन में ज्ञान का उदय हो जाता है। उस उपदेश के कुछ अंश यहाँ संगृहीत है।)

खेलगामी महाबाहुर्गजेन्द्र इव निर्मदः।
सोऽभ्यगच्छद् गुरुं काले विवक्षु र्भावमात्मनः ॥1॥

प्रणम्य च गुरौ मूर्ध्ना बाष्पव्याकुललोचनः।
कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥2॥

अप्सरः प्राप्तये यन्मे भगवन्! प्रतिभूरसि।
नाप्सरोभिर्ममार्थोऽस्ति प्रतिभूत्वं त्यजाम्यहम् ॥3॥

श्रुत्वा ह्यावर्तकं स्वर्गं संसारस्य च चित्रताम्।
न मर्त्येषु न देवेषु, प्रवृत्तिर्मम रोचते ॥4॥

यदि प्राप्य दिवं यत्नान्नियमेन दमेन च ।
अवितृप्ताः पतन्त्यन्ते स्वर्गाय त्यागिने नमः ।।5।।

अतश्च निखिलं लोकं विदित्वा सचराचरम् ।
सर्वदु:खक्षयकरे त्वद्धर्मे परमे रमे ।।6।।

तस्माद् व्याससमासाभ्यां तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।
यच्छ्रुत्वा श्रृण्वतां श्रेष्ठं परमं प्राप्नुयां पदम् ।।7।।

ततस्तस्याशयं ज्ञात्वा विपक्षाणीन्द्रियाणि च ।
श्रेयश्चैवामुखीभूतं निजगाद तथागतः ।।8।।

अहो प्रत्यवमर्शोऽयं श्रेयसस्ते पुरोजवः ।
अरण्यां मथ्यमानायामग्नेर्धूम इवोत्थितः ।।9।।

चिरमुन्मार्गविहृतो लोलैरिन्द्रियवाजिभिः ।
अवतीर्णोऽसि पन्थानं दिष्ट्या दृष्ट्याऽविमूढया ।।10।।

अद्य ते सफलं जन्म लाभोऽद्य सुमहांस्तव ।
यस्य कामरसज्ञस्य नैष्कर्म्यायोत्सुकं मनः ।।11।।

लोकेऽस्मिन्नालयारामे निवृत्तौ दुर्लभा रतिः ।
व्यथन्ते ह्यपुनर्भावात् प्रपातादिव बालिशाः ।।12।।

दु:खं न स्यात् सुखं मे स्यादिति प्रयतते जनः ।
अत्यन्तदु:खोपरमं सुखं तच्च न बुध्यते ।।13।।

अरिभूतेष्वनित्येषु सततं दु:खहेतुषु ।
कामादिषु जगत् सक्तं न वेत्ति सुखमव्ययम् ।।14।।

सर्वदु:खापहं तत् तु हस्तस्थममृतं तव ।
विषं पीत्वा यदगदं समये पातुमिच्छसि ।।15।।

अनर्हसंसारभयं मानार्हं ते चिकीर्षितम् ।
रागाग्निस्तादृशो यस्य धर्मोन्मुखपराङ्मुखः ।।16।।

रागोद्दामेन मनसा सर्वथा दुष्करा धृतिः ।
सदोषं सलिलं दृष्ट्वा पथिकेन पिपासुना ।।17।।

ईदृशी नाम बुद्धिस्ते निरुद्धा रजसाभवत् ।
रजसा चण्डवातेन विवस्वत इव प्रभा ।।18।।

सा जिघांसुस्तमो हार्दं या सम्प्रति विजृम्भते ।
तमो नैशं प्रभा सौरी विनिर्गीर्णेव मेरुणा ।।19।।

युक्तरूपमिदं चैव शुद्धसत्त्वस्य चेतसः ।
यत् ते स्यान्नैष्ठिके सूक्ष्मे श्रेयसि श्रद्धानता ।।20।।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

खेलगामी	मन्दगामी, खेलः=लीला ।
प्रतिभूः	प्रतिभवति इति, लग्नकः, जामिन ।
आवर्तकम्	आवृत्यते यस्मात्, तम्; जिससे पुनरावर्तन होता है, वापस आना पड़ता है ।
चित्रताम्	विचित्रताम्; विचित्रता को ।
व्याससमासाभ्याम्	व्यासः च समासः च ताभ्याम्; विस्तार और संक्षेप से ।
विपक्षाणि	विपरीतानि, विमुखानि; विषयों से विमुख ।
आमुखीभूतम्	सम्मुखम्, सामने; समीपवर्ती ।
प्रत्यवमर्शः	ध्यानम्, विवेकः ।
पुरोजवः	पुरोगामी; आगे जाने वाला ।
विहृतः	वि√हृ+त (क्त, कर्त्रर्थ में) विहार करने वाला ।
नैष्कर्म्याय	निष्क्रमणाय, वैराग्याय ।
आलयारामे	आलयेषु विषयेषु आरमते यत्र, तस्मिन्; जहाँ भोगों में रमण किया जाता है, उसमें ।
अपुनर्भावात्	मोक्षात्, मोक्ष से ।
अत्यन्तदुःखोपरमम्	अत्यन्तं दुःखानाम् उपरमः अभावः विनाशो वा यस्मिन् दुःखों का नितान्त अभाव अथवा विनाशशील ।

अगदम्	औषधम्, दवा को । 'अगद' पुं० है ।
अनर्हसंसारभयम्	न अर्हति संसाराद् भयम् तत्; संसार से भयभीत न होने योग्य ।
रागोद्दामेन	रागेण उद्दामम् उच्छृङ्खलम्, तेन; राग से उच्छृंखल (मन) के द्वारा ।
रजसा	रजोगुणेन, पक्षे धूल्या; रजोगुण से, पक्ष में धूलि से ।
सौरी	सूर्यस्य इयं सौरी; सूर्य की ।
विनिर्गाणा	विनिस्सृता; निकली हुई ।
युक्तरूपम्	अनुरूपम्; उचित । रूपम् प्रत्यय है ।

अभ्यासः

1. **त्रिभैः वाक्यैः लघूत्तराणि लिखत—**

क. नन्दः काले कम् किमर्थञ्च अभ्यगच्छत् ?

ख. नन्दमते कीदृशः स्वर्गः कीदृशश्च संसारः ?

ग. तथागतः नन्दस्य जन्म कथं सफलम् अवर्णयत् ?

2. **पद्यांशं पूरयत—**

क. अद्य ते सफलं .... ।
.... मनः ॥

ख. लोके .... ।
.... बालिशाः ॥

ग. अरिभूतेषु .... ।
.... सुखमव्ययम् ॥

घ. सर्वदुःखापहं .... ।
.... पातुमिच्छसि ॥

3. तालिकाद्वय विशेष्यविशेषण शब्दयोः उचितयोगं कुरुत—

मानार्हं	सलिलम्
मनसा	चिकीर्षितम्
दुष्करा	पिपासुना
सदोषम्	धृतिः
पथिकेन	रागोद्दामेन
बुद्धिः	चण्डवातेन
रजसा	निरुद्धा
तमो	श्रेयसि
प्रभा	हार्दम्
सूक्ष्मे	सौरी

4. अधोलिखितानां पद्यानां भावार्थः लिख्यन्ताम् —

क. खेलगामी .... भावमात्मनः ।
ख. अद्य ते सफलं .... उत्सुकं मनः ।
ग. युक्तरूपमिदं .... श्रद्दधानता ।

5. तथागतस्य उपदेशसारं दशवाक्येषु वर्णयत ।

6. अधस्तात् कतिचित् सन्धियुक्तानि कतिचित् च समस्तानि पदानि प्रदत्तानि, तेषु सन्धियुक्तानि पदानि विचित्य तेषां विच्छेदान् कुरुत—

महाबाहुः, त्यजाम्यहम्, सोऽभ्यगच्छत्, अवितृप्ताः, यच्छ्रुत्वा, सर्वदुःखक्षयकरे, सुमहांस्तव, कामरसज्ञस्य, स्यान्नैष्ठिके, चण्डवातेन ।

7. अधः समासविग्रहाः प्रदर्शिताः । तेषां पुरस्तात् समस्तपदानि समास-नामानि च लिखत—

बाष्पेण व्याकुले लोचने यस्य	....	....
अप्सरसः प्राप्तये	....	....
व्यासश्च समासश्च ताभ्याम्	....	....
इन्द्रियाणि एव वाजिनः तैः	....	....
न अर्हः	....	....

8. अधोलिखितैः पदैः वाक्यानि रचयत—

विवक्षुः, चिरं, दिष्ट्या, निजगाद, चिकीर्षितम्, मानार्हः ।

मेघसन्देशः

(इस पाठ में प्रथम पाँच श्लोक महाकवि कालिदास विरचित गीतिकाव्य **मेघदूतम्** के पूर्वमेघ से तथा शेष उत्तरमेघ से लिये गये हैं। कुबेर के शाप के कारण वर्ष भर के लिये निर्वासित कोई विरही यक्ष रामगिरि पर निवास करता हुआ वर्षाकाल के आरंभ में आकाश में घिरे मेघ से प्रार्थना करता है कि वह अलका पुरी जाकर उसका संदेश उसकी प्रिया तक पहुँचा दे। इन पद्यों में मेघ के प्रति यक्ष का अनुनय एवं प्रेषणीय संदेश मार्मिक ढंग से वर्णित है।)

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥1॥

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥2॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥3॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥4॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥5॥

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥6॥

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥7॥

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन् मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥8॥

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत् कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥9॥

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान् निवृत्तः।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥10॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

कान्ताविरहगुरुण ।	कान्तया (समं) विरहः तेन गुरुः तेन; पत्नी विरह के कारण दुस्तर ।
स्वाधिकारात्	स्वस्याधिकारः (ष० तत्०) । स्वश्चासावधिकारश्च इति वा (कर्मधारय) । स्वनियोगात्; अपने कर्तव्य से ।
जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु	जनकतनयायाः सीतायाः स्नानैः पुण्यानि पवित्राणि उदकानि येषां तेषु; सीता के स्नानों से पवित्र जल वालों में ।
कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः	कनकस्य वलयः कटकम्, तस्य भ्रंशेन पातेन रिक्तः प्रकोष्ठः यस्य सः; सोने के कंगन के गिरने से खाली पहुंचे वाला।
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्	वप्रक्रीडाः उत्खातकेलयः तासु परिणतः तिर्यग्दन्तप्रहारः गजः, तम् इव प्रेक्षणीयं दर्शनीयम्; मिट्टी उखाड़ने की क्रीड़ाओं में टेढ़े दांत के प्रहार वाले हाथी के समान दर्शनीय ।
नभसि प्रत्यासन्ने	श्रावणे प्राप्ते सति; श्रावण आ जाने पर । श्रावण अर्थ में नभस् पुं० है ।
प्रवृत्तिम्	वार्ताम्; समाचार को ।
प्रत्यग्राः	अभिनवाः; ताजे ।

पुष्करावर्तकानां	पुस्कराश्च आवर्तकाश्च केचन मेघानां श्रेष्ठाः तेषाम्; पुष्कर और आवर्तक नामक श्रेष्ठ मेघों के।
प्रकृतिपुरुषम्	प्रधानपुरुषम्; मुख्य पुरुष को।
कामरूपम्	इच्छाधीनविग्रहम्; इच्छानुसार रूप धारण करने वाले को।
अधिगुणे	अधिगुणे पुंसि; अधिक गुणों वाले मनुष्य में।
लब्धकामा	सफला, सफलता प्राप्त करने वाला।
अव्यापन्नः	न व्यापन्नः, सजीवः; जीवित।
श्यामासु	प्रियङ्गुलतासु; प्रियङ्गु की बेलों में।
वक्त्रच्छायाम्	मुखकान्तिम्, चेहरे की शोभा को।
उत्पश्यामि	तर्कयामि; कल्पना करता हूं, देखता हूं।
अस्रैः	अश्रुभिः, आँसुओं से।
अवलम्बे	धारयामि, थामे हुए हूँ।
उपनतम्	प्राप्तम्, प्राप्त हुआ है।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैः	साभिज्ञानं सलक्षणं यथा तथा प्रहितं कुशलं येषु तैः; पहिचान के साथ भेजे हुए कुशल वाले (वचनों) के साथ।

अभ्यासः

1. उत्तराणि लिखत—

क. यक्षः कुत्र वसतिं चक्रे ?

ख. यक्षः कथंभूतं मेघं ददर्श ?

ग. यक्षः मेघाय किं व्याजहार ?

घ. याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा—कथम् ?

2. भावार्थं लिखत—

क. सन्तप्तानां·········हर्म्या ।

ख. तामायुष्मन्·········एतदेव ।

3. स्तम्भद्वये दत्तान् पद्यांशान् संयोजयत—

क. उत्पश्यामि	क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ।
ख. हन्तैकस्मिन्	प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्रूविलासान् ।
ग. आत्मानं ते	न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ।
घ. क्रूरस्तस्मिन्नपि	चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
ङ. नत् कल्याणि	जीवितं धारयेथाः ।
च. प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलम्	त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।

4. अधोभागे एकतः सन्धियुक्तानि पदानि अन्यतश्च सन्धिनामानि लिखितानि। तानि सम्यक् योजयत—

तस्मिन्नद्रौ	वृद्धिसन्धिः
पुण्यादेकेषु	विसर्गसन्धिः
वसतिरलका	व्यञ्जनसन्धिः
ब्रूया एवम्	गुणसन्धिः
हन्तैकस्मिन्	व्यञ्जनसन्धिः
नन्वात्मानम्	विसर्गसन्धिः
शैलादाशु	यण्सन्धिः

5. अधस्तात् कानिचित् समस्तानि कानिचिच्च सन्धियुक्तानि पदानि प्रदर्शितानि तेषु समस्तानि पदानि विचित्य तेषां विग्रहान् प्रदर्शयत—

तेनार्थित्वम्, वर्षभोग्येण, लब्धकामा, नाधमे, व्याजहार, चकितहरिणी, यावदिच्छामि, कस्यात्यन्तम्, क्रूरस्तस्मिन्नपि, चक्रनेमिक्रमेण ।

6. अधोलिखितेषु क्रियापदेषु धातु-लकार-पुरुष-वचनानि निर्दिशत—

उत्पश्यामि, जानामि, हर, ब्रूयाः, आलुप्यते, असि ।

सप्तमस्तरङ्गः

उमा-ब्रह्मचारि-संवादः

(निम्नलिखित श्लोक महाकवि कालिदास विरचित महाकाव्य कुमारसंभवम् के पंचम सर्ग से लिये गये है। शिव के द्वारा कामदेव को भस्म हुआ देखकर पार्वती ने तपस्या से शिव को प्रसन्न करके पति के रूप में प्राप्त करने का निश्चय किया। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ब्रह्मचारी के वेष में पार्वती के समीप आये। उसने पार्वती से प्रश्न किया—'सब प्रकार के अनुकूल साधनों के होने पर भी इस युवावस्था में इतना कठोर तप करने का क्या प्रयोजन है ?' पार्वती की सखी के द्वारा यह ज्ञात होने पर कि शिव को पति के रूप में प्राप्त करना ही तपस्या का उद्देश्य है, ब्रह्मचारी ने शिव पर अनेक दोषारोपण किये। इससे क्षुब्ध होकर पार्वती ने अकाट्य तर्कों से ब्रह्मचारी द्वारा प्रस्तुत आक्षेपों का निराकरण कर शिव को ही वरण करने का निश्चय व्यक्त किया।)

अथाह वर्णी विदितो महेश्वरस्-
तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्तसे।
अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं
तवानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे ॥1॥

अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते
करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः ।
करेण शंभोर्वलयीकृताहिना
सहिष्यते तत् प्रथमावलम्बनम् ।।2।।

त्वमेव तावत परिचिन्तय स्वयं
कदाचिदेते यदि योगमर्हतः ।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं
गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च ।।3।।

चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः
परोऽपि को नाम तवानुमन्यते ।
अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयोर्-
विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु ।।4।।

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना
यदूढया वारणराजहार्यया ।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया
महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ।।5।।

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां
समागमप्रार्थनया पिनाकिनः ।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्-
त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ।।6।।

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता
दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु ।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते
तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ।।7।।

निवर्तयास्मादसदीप्सितान् मनः
क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा ।

अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी
श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥8॥

इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि
प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया ।
विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया
विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते ॥9॥

उवाच चैनं परमार्थतो हरं
न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम् ।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ॥10॥

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स संपदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥11॥

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं
न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥12॥

तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते
ध्रुवं चिताभस्मरजो विशुद्धये ।
तथा हि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं
विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ॥13॥

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया
तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः ।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥14॥

निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः
पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः ।
न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ॥15॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

वर्णी — ब्रह्मचारी; वर्णोऽष्टविधमैथुनपरिहारलक्षणा प्रशस्तिः, साऽस्यास्ति इति ।

अमङ्गलाभ्यासरतिः — अमङ्गलाभ्यासे अमङ्गलाचारे रतिर्यस्य सः ; अमङ्गलमय कार्यों में रुचि रखने वाला ।

अनुवृत्तिः — अनुसरणम्; समर्थन ।

अवस्तुनिर्बन्धपरा — अवस्तुनि तुच्छवस्तुनि निर्बन्धोऽभिनिवेशः परं प्रधानं यस्याः सा; निस्सार वस्तु के लिए हठ करने वाली ।

आमुक्तविवाहकौतुकः — आमुक्तम् आसञ्जितं विवाहे कौतुकं मङ्गलसूत्रं यस्य सः; विवाह के मङ्गलसूत्र को धारण करने वाला ।

वलयीकृताहिः — अवलयः वलयः (यथा सम्पद्यते तथा) कृतः, भूषणीकृतसर्पः; 'अहि' के साथ कर्म० ; सर्प को कङ्कण की तरह धारण करने वाला ।

कलहंसलक्षणम् — कलश्चासौ हंसश्च, तस्य लक्षणमिव लक्षणं यस्य तत्; कलहंस के लक्षण जैसे लक्षण वाला ।

चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः — चतुष्के गृहविशेषे यः पुष्पप्रकरः तत्रावकीर्णयोः; चतुश्शाल में पुष्प-समूह पर चलने वाले (तुम्हारे चरणों) के ।

विडम्बना — परिहासः ।

स्मेरमुख:	सस्मितमुख:; मुख पर मुस्कराहट वाला, उपहास करने वाला।
समागमप्रार्थनया	प्राप्तिकामनया:; प्राप्ति की कामना से।
कलावत:	चन्द्रस्य; चाँद की।
अलक्ष्यजन्मता	अलक्ष्यम् अज्ञातं जन्म यस्य तस्य भाव:; जन्म के विषय में कुछ पता न होना।
निवेदितम्	ज्ञापितम्; सूचित कर दिया है।
व्यस्तम् अपि	एकम् अपि; एक भी।
श्मशानशूल:	श्मशान भूमि में गड़ी हुई लम्बी लकड़ी; खम्भा।
यूप:	खंभा जो यज्ञ-मण्डप में पशवालम्भ के लिए गाड़ा जाता है और वैदिक मन्त्रों से उसका संस्कार किया जाता है।
प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया	प्रवेपमानेन स्फुरता चलेनाधरोष्ठेन लक्ष्य: अनुमेय: कोपः यस्या: तथोक्तया तया; काँपते हुए निचले होंठ से दिखने योग्य क्रोध वाली (पार्वती) के द्वारा।
विकुञ्चितभ्रूलतम्	विकुञ्चिते कुटिलिते भ्रूलते यस्मिन् तत् तथा (क्रि० वि०);लताओं के समान भौंहों को सिकोड़ कर।
अलोकसामान्यम्	न लोकसामान्यम्, असाधारणजनोचितम्। समानमेव सामान्यम्। स्वार्थे ष्यञ्; असाधारण।
पितृसद्मगोचर:	पितॄणां सद्म गृहं गोचरो विषयः स्थानं यस्य श्मशानाश्रय:; श्मशान में निवास करने वाला।
अम्बरौकसाम्	अम्बरस् एव ओक: येषां तेषां (ब० व०); आकाश ही घर है जिनका उनका, देवताओं का।
भावैकरसम्	भावः शृंगारः एको रसो यस्य तत्, शृंगार मात्र के रस वाला; प्रेम ही जिसके लिए आनन्दप्रद है।
कामवृत्तिः	कामेन वृत्तिरस्य, स्वेच्छाव्यवहारी।

अभ्यास:

1. **एकपदमुत्तरं लिखत—**

   क. पार्वत्या: कर: कीदृश: वर्तते ?

   ख. शम्भो: करेण पार्वत्या: किं न सहिष्यते ?

   ग. कस्य समागमप्रार्थनया द्वयं शोचनीयतां गतम् ?

   घ. के महात्मनां चरितं द्विषन्ति ?

2. **द्वित्रै: वाक्यै: लघूत्तराणि लिखत—**

   क. महाजन: स्मेरमुखो भविष्यति । कुत: ?

   ख. वरेषु किं त्रितयं मृग्यते ? तस्याभाव: शिवे कथं वर्णित: ?

   ग. ब्रह्मचारिण: प्रतिकूलवचनं श्रुत्वा पार्वती निजकोपं कथं प्रदर्शितवती ?

   घ. पार्वती वचनीयं नेक्षते । कुत: ?

3. **रिक्तस्थानानि पूरयत—**

   क. अथाह·············महेश्वर:·············वर्तसे ।

   ख. परोऽपि को······तवानुमन्यते ।

   ग. त्वमस्य लोकस्य च·········।

   घ. वधूदुकूलं·········शोणितबिन्दुवर्षि च ।

4. **पञ्चवाक्यै: व्याख्या क्रियताम्—**

   क. श्मशानशूलस्य न यूप सत्क्रिया ।

   ख. न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपु: ।

   ग. शृणोति तस्मादपि य: स पापभाक् ।

   घ. न सन्ति याथार्थ्यविद: पिनाकिन: ।

5. **एकादशद्वादशश्लोकयो : येषु पदयुग्मेषु विरोधाभास: विद्यते तानि पदयुग्मानि लिखत—**

   यथा—अकिञ्चन: सन् प्रभव: स सम्पदाम् ।

प्रायोगिकप्रश्नः (गृहकार्यम्)

6. **कालिदासमतानुसारेण प्रकृतपाठस्थ वरेप्सितगुणान् मनसि निधाय—**
   'कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्
   बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः'—
   इत्यस्य श्लोकस्य, स्वाभिप्रायाविष्करणपुरस्सरं विंशत्यनधिकैः वाक्यैः विमर्शनं कुरुत।

7. **प्रथमद्वितीयश्लोकाभ्यां विसर्ग-सन्धियुतानि पदानि विचित्य तेषु सन्धिच्छेदो विधीयताम् ।**

8. **अधोलिखितेषु पदेषु नामोल्लेखपुरस्सरं समासविग्रहं कुरुत—**

   शोणितबिन्दुवर्षि, विरूपाक्षम्, दिगम्बरः, त्रिलोचने, त्रिलोकनाथः, अकिञ्चनः, पापभाक् ।

9. **अधोलिखितैः क्रियापदैः स्वसंस्कृतेन वाक्यानि विरचयत—**

   वर्तसे, उत्सहे, सहिष्यते, कल्पते, अनुमन्यते, उदीर्यते, मृग्यते ।

अष्टमस्तरङ्गः

रघोर्दिग्विजयः

(इस पाठ में कविकुलगुरु कालिदास के महाकाव्य रघुवंशम् के चतुर्थ सर्ग का एक संक्षिप्त अंश दिया गया है। इसमें महाराज रघु के द्वारा विजित देशों का सविस्तर वर्णन किया गया है। इससे कालिदास की वह राष्ट्रीय भावना प्रकट होती है जो इस देश की विविधता में एकता लायी है। दिग्विजय के पश्चात् रघु विश्वजित् नामक यज्ञ मे सर्वस्व दान कर देते है, जिससे यह व्यक्त होता है कि वे राष्ट्र की सम्पत्ति को राष्ट्र के हित में लगा देने के व्यसनी थे।)

स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः ॥1॥

इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ॥2॥

स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ॥3॥

स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा ।
अहितानिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः ॥4॥

स सेनां महतीं कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम् ।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः ॥5॥

वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान् ।
निचखान जयस्तम्भान् गङ्गास्रोतोऽन्तरेषु सः ॥6॥

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः ।
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ ॥7॥

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः ।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥8॥

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना ।
अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ ॥9॥

ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः ।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम् ॥10॥

भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम् ।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः ॥11॥

अवकाशं किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥12॥

पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥13॥

ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥14॥

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥15॥

काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः ।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः ॥16॥

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ॥17॥

शरैरुत्सवसङ्केतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किंनरान् ॥18॥

तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः ।
पौलस्त्यतुलितस्याद्रेरादधान इव ह्रियम् ॥19॥

इति जित्वा दिशो जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम् ।
रजो विश्रामयन् राज्ञां छत्रशून्येषु मौलिषु ॥20॥

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥21॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

प्रतिपद्य — प्राप्य; प्राप्त करके ।

सवित्रा — सूर्येण; सूर्य के द्वारा ।

इक्षुच्छायनिषादिन्यः — इक्षूणां छाया इक्षुच्छायम्, तत्र निषण्णाः इक्षुच्छायनिषादिन्यः; ईख की छाया में बैठने वाली ।

शालिगोप्यः — शालीन् गोपायन्ति इति शालिगोप्यः; धानों की रखवाली करने वाली ।

गुप्तमूलप्रत्यन्तः — गुप्तौ मूल निवासस्थानं प्रत्यन्तः प्रान्तदुर्गं च येन सः; सुरक्षित कर दिया है निवास स्थान और प्रान्तदुर्ग को जिसने । द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ।

शुद्धपार्ष्णिः — उद्धृतपृष्ठशत्रुः; उखाड़ दिया है पीछे वाले शत्रु को जिसने, अथवा सेनया रक्षितपृष्ठदेशः; सेना के द्वारा सुरक्षित कर दिया है पृष्ठ देश को जिसने ।

अयान्वितः — शुभदैवान्वितः; शुभ भाग्य से युक्त । अयः शुभावहो विधिः ।

प्राचीनबर्हिष्	प्राचीनं बर्हिर्यज्ञो यस्य; इन्द्र ।
तरसा	बलेन; बल से ।
स्रोतोऽन्तरेषु	स्रोतसाम् अन्तरेषु द्वीपेषु; धाराओं के मध्य मे स्थित द्वीपों मे ।
उत्कलादर्शितपथः	उत्कलैः राजभिः आदर्शितपथः; उत्कल राजाओं द्वारा दिखाए हुए मार्ग वाला ।
वेलातटेन	वेलायाः समुद्रकूलस्य तटेन उपान्तेन; समुद्र के किनारे के पास वाली भूमि से ।
अनाशास्यजयः	अप्रार्थनीयजयः (बिना यत्न के ही प्राप्त होने के कारण); विजय जिसके लिए प्रार्थनीय नहीं है । आ (आङ्) √शास् (अदादि) य+(ण्यत्) । नञ् ।
ताम्रपर्णी	नदीनाम एतत्; एक नदी का नाम ।
मुक्तासारम्	मौक्तिकवरम्; उत्तम मोतियों को ।
चूर्णप्रतिनिधिः	चूर्णस्य कुङ्कुमादिरजसः प्रतिनिधिः ।
रामाय	जामदग्न्याय परशुरामाय; जमदग्नि के पुत्र परशुराम को ।
उस्रैः	किरणैः; किरणों से ।
अवरोधानाम्	अन्तःपुरस्त्रीणाम्; अन्तःपुर की स्त्रियों का ।
कपोलपाटलादेशि	कपोलेषु पाटलस्य पाटलिम्नः ताडनादिकृतारुण्यमादिशतीति; (विलाप करते समय लगातार मुँह को पीटने से) कपोलों की लाली को लाने वाला ।
जन्यम्	युद्धम्; युद्ध ।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम्	नाराचानां बाणानां क्षेपणीयानां भिन्दिपालानाम् अश्मनां च निष्पेषेण संघर्षेण उत्पतिताः अनलाः यस्मिन्; बाणों, भिन्दिपालों और पत्थरों के संघर्ष से उत्पन्न हो गई है आग जिसमें ।
उत्सवसङ्केतान्	उत्सवसङ्केताख्यान् सप्त गणान्; उत्सव संकेत नामक सात जातियों को ।
अक्षोभ्यम्	अधृष्यम्; अडिग ।
तुलितस्य	चालितस्य; हिलाए हुए की ।

आवधानः	जनयन्; उत्पन्न करता हुआ।
विश्वजितम्	सर्वस्वदक्षिणम् यज्ञम्; ऐसे यज्ञ को जिसमे सब कुछ दक्षिणा में दे दिया जाता है।
आजह्रे	आ ↳ हृ, लिट् आत्मने०, प्र०पु०, ए० व०। वितेने। आयोजन किया।

अभ्यासः

1. एकपदमुत्तरं लिखत—

क रघुः कीदृशान् वङ्गान् उत्खाय जयस्तम्भान् निचखान ?
ख. रघुः स्थलवर्त्मना कान् जेतुं प्रतस्थे ?
ग. रघोः घोरं जन्यं कैः सह अभवत् ?
घ. रघुः किन्नरान् किं गापयामास ?
ङ. रघुः कीदृशं यशोराशिम् आरुरोह ?

2. उचितं पर्यायपदं रेखाङ्कितं कुरुत—

क. हुताशनः	=	अग्निः, पिशिताशनः।
ख. प्राचीनबर्हिः	=	शक्रः, विक्रमः।
ग. केतुः	=	सेतुः, पताका।
घ. गङ्गा	=	भागीरथी, सूर्यतनया।
ङ. मेदिनी	=	शालिनी, पृथ्वी।
च. चमूः	=	सेना, सीमा।
छ. नाराचः	=	पिशाचः, बाणः।
ज. वारिमुक्	=	मेघः, भेकः।
झ. वर्त्म	=	सद्म, पन्थाः।
ञ. उदधिः	=	सागरः, सगरः।
ट. भास्वान्	=	विद्वान्, सूर्यः।
ठ. रेणुः	=	रजः, कणः।
ड. करः	=	हस्तः, वरः।
ढ. जन्यम्	=	युद्धम्, शुद्धम्।

3. **कोष्ठान्तर्गताभ्यां पदाभ्यां समुचितं पदम् आदाय रिक्तस्थानं पूर्यताम्—**

क. दिनान्ते निहितं — सवित्रेव हुताशनः । (तेजः, रजः)

ख. दिग्जिगीषया बलमादाय स प्रथमं — ययौ । (प्राचीं, कौबेरीम् दिशम्)

ग. — तस्य गोप्तुः गुणोदयं यशः जगुः। (किन्नराः, शालिगोप्यः)

घ. स धर्मविजयी नृपो गृहीतप्रतिमुक्तस्य महेन्द्रनाथस्य — जहार ।
(श्रियम्, मेदिनीम्)

ङ. उदन्वान् अपरान्तमहीपालव्याजेन — करं ददौ । (रघवे, रामाय)

च. — हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव । (आदानम्, अनुदानम्)

4. **स्तम्भद्वयगतान् वाक्य-खण्डान् संयोजत—**

क. सः बभौ	कलिङ्गाभिमुखो ययौ ।
ख. सः निचखान	तस्य वीर्यं सोढुम् अनीश्वराः ।
ग. सः उत्कलादर्शितपथः	सः जिष्णुः न्यवर्तत ।
घ. काम्बोजाः समरे	विश्वजितं सर्वस्वदक्षिणम् ।
ङ. राज्ञां मौलिषु रजः विश्रामयन्	भगीरथः हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव ।
च. सः आजह्रे यज्ञं	गङ्गास्रोतोन्तरेषु जयस्तंभान् ।

5. **ससन्दर्भं संक्षेपेण व्याख्या क्रियताम्—**

क. ते निपत्य ददुः तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम् ।

ख. अलकेषु चमूरेणुः चूर्णप्रतिनिधीकृतः ।

ग. इन्द्रियाख्यानिव रिपून् तत्त्वज्ञानेन संयमी ।

घ. दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः ।

प्रायोगिकप्रश्नः (गृहकार्यम्)

6. **रघोः दिग्विजययात्रायां वर्णितान् प्रधानप्रदेशान् सारभूतं तत्त्वं अधिकृत्य कालिदासस्य राष्ट्रकवित्वं पञ्चविंशत्यनधिकैः वाक्यैः साधयत ।**

7. **अधोलिखितेषु सन्धिविच्छेदो विधीयेताम्—**

सवित्रेव, गोप्तुर्गुणोदयम्, षड्विधम्, दिग्जिगीषया, पारसीकांस्ततो, उद्धरिष्यन्, यशोराशिम् ।

8. **अधस्तात् एकतः समस्तपदानि अन्यतश्च तन्नामानि लिखितानि सन्ति। तत्र शुद्धं यत्समासनाम तत् लिखत—**

क. हुताशनः	कर्मधारयः, बहुव्रीहिः, तत्पुरुषः
ख. महोदधेः	कर्मधारयः, द्वन्द्वः, बहुव्रीहिः
ग. अनीश्वराः	बहुव्रीहिः, नञ्, कर्मधारयः
घ. विरतोत्सवान्	कर्मधारयः, द्वन्द्वः, बहुव्रीहिः
ङ. हरजटाभ्रष्टाम्	तत्पुरुषः, बहुव्रीहिः, कर्मधारयः

9. **पदपरिचयो दीयताम्—**

निहितम्, आदाय, कर्षन्, जेतुम्, सोढुम्, विश्रामयन्, आदानम् ।

नवमस्तरङ्गः

द्रौपद्या युधिष्ठिरोत्साहनम्

(यह प्रसंग महाकवि *भारवि* के महाकाव्य किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग से लिया गया है। युधिष्ठिर द्वारा ब्रह्मचारी के वेष में भेजा हुआ एक वनचर *दुर्योधन* की रीति-नीति का पता लगाकर लौटता है। वनचर युधिष्ठिर को दुर्योधन के शासन की पूरी जानकारी देता है और इस बात का संकेत देता है कि जुए मे जीते हुए राज्य को वह पुनः नीति से भी जीत लेने की चेष्टा में लगा हुआ है। वनचर को बिदा करके युधिष्ठिर द्रौपदी के निवास में आकर सारी बात अपने भाइयों को सुनाता है। शत्रुओं की सफलता को सुनकर क्षुब्ध द्रौपदी अपने मनोविकारों को रोक नहीं पाती और युधिष्ठिर के क्रोध और उद्योग को प्रदीप्त करने वाले वचन कहकर उसे अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है।)

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती—
स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीर्-
उदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः ॥1॥

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां
निरस्तनारीसमया दुराधयः ॥2॥

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभिश्-
चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः ।
त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता
मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता ॥3॥

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधा-
नसंवृताङ्गान् निशिता इवेषवः ॥4॥

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्
मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥5॥

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते
विवर्तमानं नरदेव वर्त्मनि ।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः
शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ॥6॥

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः ।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषा दरः ॥7॥

महारथः सत्यधनस्य मानसं
दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः ॥8॥

विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्
कुरूनकुप्यं वसु वासवोपमः।
स वल्कवासांसि तवाधुनाहरन्
करोति मन्युं न कथं धनञ्जयः ॥9॥

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती
कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ
विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ॥10॥

इमामहं वेद न तावकीं धियं
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां
रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः ॥11॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

अपाकृतीः — विकारान्; विकारों को।

ततस्त्याः — ततो द्विषद्भ्यः आगताः; शत्रुओं के कारण प्राप्त हुए।

मन्युव्यवसायदीपिनीः — क्रोधोद्योगसंवर्धिनीः; क्रोध और उत्साह को बढ़ाने वाली (उक्तियों को)।

अनुशासनम् — नियोगवचनम्; कर्तव्योपदेशः।

निरस्तनारीसमयाः — त्याजितशालीनतारूपवनिताचाराः; छुड़वा दिया है नारीजनोचित लज्जा आदि आचारों को जिन्होंने। *समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविद इत्यमरः।*

समय:	आचार: ।
दुराधय:	दुष्टा: मनोव्यथा:; दु:सह मनोव्यथाएँ ।
आखण्डलतुल्यधामभि:	इन्द्रतुल्यप्रभावै:; इन्द्र के समान तेज वालो के द्वारा । धामन् (नपुं०) तेज: ।
अपवर्जिता	परिहृता, त्यक्ता; त्याग दी गई ।
असंवृताङ्गान्	कवचरहितशरीरान्; नंगे शरीर वालों को ।
अनुरक्तसाधन:	अनुकूलसहायवान्; अनुकूल रहने वाले अनुचरों से युक्त ।
एतर्हि	इदानीम्; अब ।
विवर्तमानम्	वर्तमानम्, विद्यमानम्; स्थित ।
उदीरित:	उद्दीपित:, परिवर्धित:; बढ़ा हुआ ।
उच्छिख:	उद्गतज्वाल:; ऊँची उठी शिखाओं वाला ।
अवन्ध्यकोपस्य	अवन्ध्य: कोप: यस्य तस्य:; सफल क्रोध वाले की ।
विहन्तु:	विनाशकस्य; नाश करने वाले के ।
विद्विषादर:	(1) विद्विषा+आदर:, (2) विद्विषा+दर:; श्लोक के पिछले दो पादों का अन्वय इस प्रकार करना चाहिए—अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन (सता) जनस्य आदर: न (भवति), विद्विषा (सता) दर: न (भवति) । क्रोधरहित पुरुष के अनुराग से युक्त होने पर उसके प्रति किसी मनुष्य का आदर नहीं होता और शत्रुता से युक्त होने पर उससे किसी को भय भी नहीं होता ।
लोहितचन्दनोचित:	उचितलोहितचन्दन:, अभ्यस्तरक्तचन्दन:; लाल चन्दन का अभ्यासी, अथवा लोहितचन्दनस्य उचित: योग्य:, लाल चन्दन के योग्य । √ उच् समवाये, दिवादि । क्त प्रत्यय ।
अन्तर्गिरि	गिरिषु अन्त:, (अव्ययीभाव); पर्वत में ।
दुनोति	परितापयति; संतप्त करता है ।
प्राज्यम्	प्रभूतम्; प्रचुर ।
कचाचितौ	कचव्याप्तौ; केशों से व्याप्त । कच पुं० है ।

अगजौ पर्वतोत्पन्नौ; पर्वत में उत्पन्न हुए। अग, नग दोनों के दोनों अर्थ हैं—पर्वत, वृक्ष।

अभ्यासः

1. **रिक्तस्थानानि पूरयत—**

   क. उदाजहार ············ गिरः।

   ख. चिरं धृता भूपतिभिः ············ ।

   ग. ············ ते मूढधियः पराभवम्।

   घ. भवन्ति ············ स्वयमेव देहिनः।

2. **द्वयोः स्तम्भयोः समुचितं योजनं कुरुत—**

क. दुनोति	मन्युं न कथं धनञ्जयः।
ख. करोति	नो कच्चिदयं वृकोदरः।
ग. विलोकयन्	क इवापहारयेत्।
घ. सजन्ति	उत्सहसे न बाधितुम्।
ङ. प्रविश्य	चेतः प्रसभं ममाधयः।
च. परैस्त्वदन्यः	हि घ्नन्ति शठास्तथाविधाः।

3. **सरलवाक्यैः व्याख्यां कुरुत—**

   क. व्यवसाययन्ति मां निरस्तनारीसमया दुराधयः।

   ख. मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता।

   ग. मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्।

   घ. शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः।

4. **मनस्विन्याः द्रौपद्याः क्रोधोद्दीपनस्य कानि कारणानि? दशपङ्क्तिषु लिखत।**

5. अ स्तम्भे सन्धिविच्छेदाः प्रदर्शिताः सन्ति । तत्र यथायथं आ स्तम्भे सन्धियुक्त पदानि इ स्तम्भे सन्धिनामानि च लिखत—

अ	आ	इ
क. उत्+आजहार		
ख. द्रुपद+आत्मजा	....	....
ग. दुः+आधयः	....	....
घ. स्रक्+इव	....	....
ङ. कः+इव	....	....
च. इव+इषवः	....	....
छ. भवति+अधिक्षेपः	....	....

6. सप्तमनवमैकादशश्लोकस्थितानि समासयुक्तानि पदानि विचित्य तेषां विग्रहवाक्यानि लिखत ।

7. अस्मात् पाठात् ल्यप्-प्रत्ययान्तानि तुमुन्-प्रत्ययान्तानि च पदानि विचित्य तेषां प्रयोगेण वाक्यानि रचयत ।

दशमस्तरङ्गः

बलरामस्य उग्रता

(महाकवि *माघ* विरचित **शिशुपालवधम्** महाकाव्य के *द्वितीय सर्ग* से उद्धृत निम्नश्लोकों में *बलराम* अपने छोटे भाई *श्रीकृष्ण* को शत्रु का समूल विनाश करने की प्रेरणा दे रहे हैं। शत्रु की छोटी-सी उपेक्षा भी विनाश का कारण बन जाती है। इस सृष्टि में सामान्य वस्तुओं में भी प्रतिशोध की भावना देखने में आती है। अतः *शिशुपाल* जैसे शत्रु के अपराधों के प्रति उपेक्षाभाव उचित नहीं। इसलिए हमें शिशुपाल के वध को प्राथमिकता देनी चाहिए, पाण्डवों के द्वारा यज्ञ में आने के लिए दिये गये निमन्त्रण को नहीं।)

जगाद वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः।
नयन्मधुलिहः श्वैत्यमुदग्रदशनांशुभिः ॥1॥

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ॥2॥

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारो हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः ॥3॥

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते ।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ।।4।।

मनागनभ्यावृत्त्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी ।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः ।।5।।

माजीवन्यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति ।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ।।6।।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः ।।7।।

तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता ।
अलङ्घनीयताहेतुरुभयं तन्मनस्विनि ।।8।।

स्वयं प्रणमतेऽल्पेऽपि परवायावुपेयुषि ।
निदर्शनमसाराणां लघुर्बहुतृणं नरः ।।9।।

अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्धसु विद्विषाम् ।
कथङ्कारमनालम्बा कीर्तिर्द्यामधिरोहति ।।10।।

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः ।
केसरी निष्ठुराक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः ।।11।।

यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपत्विनः ।
वयं हनाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते ।।12।।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

अदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः (बलराम जी के) मुंह रूपी कमल के पास मँडराने वाले ।

मधुलिहः भौंरे ।

श्वैत्यम्	श्वेतस्य भावः, श्वेत—ष्यञ्; श्वेतता, सफेदी ।
उदग्रदशनांशुभिः	दाँतों की स्वच्छतम कांति से ।
अखिलीकृत्य	न खिलीकृत्य; समूल नष्ट किये बिना ।
अवतिष्ठते	प्रतिष्ठित होता है ।
सामर्षं	नाराज हुए, अमर्षेण सहितः तस्मिन् ।
उदर्चिषम्	उद्गतम् ऊर्ध्वम् अर्चिः यस्य, तम्; जलती हुई आग को ।
कक्षे	घास की ढेर में ।
अभिमारुतं	हवा के रुख पर, जिस ओर आग के प्रसार की संभावना हो, उस ओर ।
मनाक्	थोड़ा सा, तनिक सा ।
अनभ्यावृत्या	एक बार, बार-बार नहीं ।
कामम्	भले ही ।
क्षमी	क्षमाशीलः ।
क्रियासमभिहारेण	बार बार (कई बार) और बहुत ।
विराध्यन्तम्	अपराध करने वाले को ।
माजीवन्	गर्हित जीवी सन्, निंदित जीवन बिताते हुए *माङ्याक्रोशे*—इति लटः शत्रादेश. ।
अवज्ञा	अपमान ।
अजननिः	अनुत्पत्तिः, (*आक्रोशे नञ्यनिः* इति नञ्पूर्वात् जन्धातोः अनिप्रत्ययः) ।
जननीक्लेशकारिणः	माता को गर्भधारण, प्रसववेदनारूपी दुःख मात्र देने वाले का ।
रजः	धूल ।
स्वस्थात्	(अपमान के बाद भी) खुश रहने वाले की अपेक्षा ।
तुङ्गत्वम्	ऊँचाई ।
इतरा	भिन्न, उससे उलटी, अर्थात् गहराई ।
न इदं	यह नहीं (अर्थात् ऊँचाई) ।
अगाधता	गहराई ।
अलङ्घनीयताहेतुः	उल्लंघन अर्थात् अपमानित न किये जाने का कारण ।

मनस्विनि	स्वाभिमानी में।
बहुतृणम्	तृणकल्पम्, ईषदसमाप्तं तृणम् (स्यादीषदसमाप्तौ तु बहुच्प्रकृति लिङ्गके)।
परवायौ उपेयुषि	शत्रु रूपी हवा के आने पर।
हेलया	आसानी से।
कथङ्कारम्	कथं, कैसे।
अनालम्बा	निराधारा।
द्याम्	दिवम्, स्वर्ग को।
मृगलाञ्छनः	मृग रूपी चिह्नवाला, मृगाङ्क, चंद्र।
निष्ठुराक्षिप्तमृगयूथः	निर्दयतापूर्वक मृगसमूह को मारनेवाला।
अवत्विन्द्रः	अवतु+इन्द्रः, इन्द्र रक्षा करें।
तपत्विनः	तपतु+इन :(इनः पत्यौ नृपार्कयोः) सूर्य चमके, तपे।
हनाम	मार डाले, (हन् धातु, लोट्, उ० पु०, बहु वचन)
समीहते	चाहता है।

अभ्यासः

1. **एकपदमुत्तरं दीयताम्—**
   - क. विपक्षमखिलीकृत्य का दुर्लभा ?
   - ख. मित्रामित्रयोः लक्षणे के ?
   - ग. उभयः अलङ्घनीयता हेतुः कस्मिन् वर्तते ?
   - घ. इनः किं करोतु ?

2. **अधोलिखितानां शब्दानां समीचीनं पर्यायशब्दं रेखाङ्कीकुरुत—**

क. मधुलिहः	मधुपान्, मधुपाः, मधुपे
ख. अखिलीकृत्य	अखिलं सर्वं कृत्वा, निर्मूलं अकृत्वा, खलं न कृत्वा

ग. उदकम्	जलम्, जालम्, जातम् ।
घ. अरिणा	हरिणा, शत्रुणा, करिणा ।
ङ. उदर्चिषम्	अग्निम्, अर्चिषम्, ज्वलन्तम् अग्निम् ।
च. मनाक्	द्राक्, प्राक्, स्वल्पम् ।

3. **ससन्दर्भ-भावं स्पष्टीकुरुत—**

क. प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ।

ख. क्रियासमभिहारेण विराध्यन्त क्षमेत कः ?

ग. स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ।

घ. निदर्शनमसाराणां लघु र्बहुतृणं नरः ।

4. **पद्यपङ्क्ति पूरयत—**

क. मा जीवन् यः ....।

ख. केसरी ....।

ग. वयं हनाम ....।

5. **बलरामस्य अभिप्रायम् दशवाक्येषु लिखत ।**

6. **एतस्मात् पाठात् स्वर-सन्धियुतानि पदानि विचित्य तेषां नामनिर्देशपूर्वकं सन्धिविच्छेदं कुरुत ।**

7. **तत्पुरुषसमासपदानि अस्मात् पाठात् विचित्य तेषां विग्रहं लिखत ।**

8. **अधोनिर्दिष्टेषु पदेषु प्रकृतिप्रत्ययौ पृथक् कुरुत—**

उपकर्ता, उपकारः, क्षमी, कीर्तिः, पाण्डवः ।

एकादशस्तरङ्गः

नैषधीयचरिते हंसविलापः

(यह अवतरण महाकवि श्रीहर्ष के सुप्रसिद्ध महाकाव्य नैषधीयचरित के प्रथम सर्ग से लिया गया है। निषध देश का राजा नल सौंदर्य में अद्वितीय और सर्वगुण सम्पन्न था। एक दिन वह विहार के लिए उपवन में गया। वहाँ उसने एक सरोवर के किनारे एक पाँव पर खड़े हुए एक स्वर्णिम हंस को देखा। कुतूहलवश उसने उसे पकड़ लिया। हंस ने अपने प्राण संकट में देख अपनी माता और पत्नी को स्मरण कर जो विलाप किया उसी का सुंदर एवं करुण वर्णन इन पद्यों में किया गया है।)

विधाय मूर्ति कपटेन वामनी
स्वयं बलिध्वंसिविडम्बिनीमयम्।
उपेतपार्श्वश्चरणेन मौनिना
नृपः पतङ्गं समधत्त पाणिना ॥1॥

तदात्तमात्मानमवेत्य संभ्रमात्
पुनः पुनः प्रायसदुत्प्लवाय सः।

गतो विरुत्योड्डयने निराशतां
करौ निरोद्धुर्दशति स्म केवलम् ॥2॥
पतत्रिणा तद् रुचिरेण वञ्चितं
श्रियः प्रयान्त्याः प्रविहाय पल्वलम् ।
चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा
चुकूज कूले कलहंसमण्डली ॥3॥
न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्-
त्वमङ्ग ! यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभः
खगास्तमाचुक्रुशुरारवैः खलु ॥4॥
न जातरूपच्छदजातरूपता
द्विजस्य दृष्टेयमिति स्तुवन् मुहुः ।
अवादि तेनाथ स मानसौकसा
जनाधिनाथः करपञ्जरस्पृशा ॥5॥
धिगस्तु तृष्णातरलं भवन्मनः
समीक्ष्य पक्षान् मम हेमजन्मनः ।
तवार्णवस्येव तुषारसीकरैर्-
भवेदमीभिः कमलोदयः कियान् ॥6॥
न केवलं प्राणिवधो वधो मम
त्वदीक्षणाद् विश्वसितान्तरात्मनः ।
विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं
विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि ॥7॥
पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा
न तेषु हिंसारस एष पूर्यते ।
धिगीदृशं ते नृपते ! कुविक्रमं
कृपाश्रये यः कृपणे पतत्रिणि ॥8॥
फलेन मूलेन च वारिभूरुहां
मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः ।

त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा
कथं न पत्या धरणी हृणीयते ॥9॥

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा
नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दय-
न्नहो विधे ! त्वां करुणा रुणद्धि नो ॥10॥

मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दया-
सखाः सखायः स्रवदश्रवो मम ।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्-
त्वयैव मातः ! सुतशोकसागरः ॥11॥

मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः
प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते ।
विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः
प्रिये ! स कीदृग् भविता तव क्षणः ॥12॥

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्
तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः ।
वियोक्ष्यते वल्लभयेति निर्गता
लिपिर्ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा ॥13॥

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा
त्वया विचित्राङ्गि ! विपद्यते यदि ।
तदास्मि दैवेन हतोऽपि हा हतः
स्फुटं यतस्ते शिशवः परासवः ॥14॥

तवापि हा हा विरहात् क्षुधाकुलाः
कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते ।
चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैर्-
गताः क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम ॥15॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

वामनीम्	ह्रस्वाम्, छोटी ।
बलिध्वंसिविडम्बिनीम्	बलिध्वंसी नारायणः तं विडम्बयतीति, तच्छीलाम्; भगवान् विष्णु का अनुकरण करने वाली ।
उपेतपार्श्वः	उपेतः पार्श्वः हंससामीप्यं येन सः, (हंस) के पास पहुँच कर ।
पतङ्गम्	पक्षिणम्, हंसम्; (हंस) पक्षी को ।
तदात्तम्	तेन धृतम्, उसके द्वारा पकड़े हुए को ।
प्रायसत्	यत्नम् अकरोत्, √यस्—लुङ् । यत्न किया ।
विरुत्य	दीनं शब्दं कृत्वा, वि+√रु+ल्यप्, दीनता भरी आवाज करके ।
निरोद्धुः	ग्रहीतुः, पकड़ने वाले के ।
चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा	चलन्ती पदाम्भोरुहे चरणकमले तयोः यौ नूपुरौ तौ उपमा उपमानं यस्याः सा, चलते हुए चरण कमलो के नूपुरों की समानता वाली ।
उज्झितस्थितिः	उज्झिता परित्यक्ता स्थितिः मर्यादा येन सः, मर्यादा का परित्याग करने वाला ।
प्रहाय	विहाय, छोड़कर ।
आरवैः	शब्दैः, आवाजों से ।
जातरूपच्छदजातरूपता	जातरूपस्य सुवर्णस्य छदौ पक्षौ ताभ्यां जातं रूपं सौन्दर्यं यस्य तस्य भावः, सोने के पंखों से उत्पन्न सुन्दरता ।
द्विजस्य	पक्षिणः, पक्षी की ।
मानसौकसा	मानसम् ओकः गृहं यस्य तेन, मानस में रहने वाले (हंस) के द्वारा ।
तृष्णातरलम्	तृष्णया तरलम्, लोभ से चञ्चल ।
कमलोदयः	कमला लक्ष्मीः तस्याः उदयः, लक्ष्मी की वृद्धि ।
निबर्हणम्	मारणम्, मारना ।

न तेषु	(1) न तेषु, अथवा (2) नतेषु। (1) क्या यह हिंसारस उन पर पूरा नहीं होता ? अथवा (2) तेरा यह हिंसारस नम्रों पर ही पूरा होता है।
कृपण	दीने, दीन पर।
वारिभूरुहां	कमलानां, कमलों के।
हृणीयते	लज्जते, लज्जित होती है।
मदेकपुत्रा	अहम् एवैकः पुत्रः यस्याः सा, मैं ही एक मात्र पुत्र हूँ जिसका।
वरटा	हंसस्य योषित्, हंसी, हंस पत्नी।
दयासखाः	दयालवः, दया सखी सहाया येषां ते। दयालु।
स्रवदश्रवः	स्रवन्ति अश्रूणि येषां ते, गिरते हुए आँसुओं वाले।
दुरुत्तरः	दुःखेन तरितुम् शक्यः, जो कठिनाई से पार करने योग्य।
मयि	मम विषये, मेरे विषय में।
प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः	प्रियायाः शैत्यं मृदुत्वं च तयोः शिल्पिनः, मेरी प्यारी पत्नी की शीतलता और मृदुता का निर्माण करने वाले के।
विपद्यते	म्रियते, मरा जाता है।
परासवः	मृताः, परागता असवः प्राणा येषाम्। मर गये।
कुलायकूलेषु	नीडतटेषु, घोंसलों के समीप में।
अस्फुटितेक्षणाः	अतिबाल्याद् अप्रकाशितनेत्राः; बहुत छोटे होने के कारण बन्द आँखों वाले।
चुङ्कृतैः	शिशुपक्षिणां सूक्ष्मशब्दविशेषैः, चूं चूं की आवाज़ों से।

अभ्यासः

1. एकपदमुत्तरं लिखत—
   क. नृपः कं समधत्त ?
   ख. हंसः पुनः पुनः किं कर्तुं प्रायसत् ?
   ग. के नलं आचुक्रुशुः ?
   घ. हंसेन कः अवादि ?
   ङ. हंसस्य पत्नी कीदृशी ?

2. अधोलिखितानां वाक्यानां पुरतः कोष्ठके शुद्धाशुद्ध-चिह्नम् (√ ×) निर्दिशत—
   क. हंसः पुनः पुनः उत्प्लवाय प्रायसत् । ( )
   ख. नृपः पतङ्गं समधत्त पाणिना । ( )
   ग. हंसः नरस्य करौ दशति स्म । ( )
   घ. चुकूज सरसि कलहंसमण्डली । ( )
   ङ. पदे पदे न सन्ति भटा रणोद्भटाः । ( )
   च. लिपिः हंसस्य ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा । ( )
   छ. त्वया विचित्राङ्गि विपद्यते । ( )
   ज. विधाता प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पी । ( )

3. भावार्थं स्पष्टीकुरुत—
   क. भवेदमीभिः कमलोदयः कियान् ?
   ख. धिगीदृशं ते नृपते ! कुविक्रमम् ।
   ग. मदेकपुत्रा जननी जरातुरा ।

4. हंसविलापं पङ्क्तिदशकेन वर्णयत ।

5. गुणसन्धियुतानि पदानि एतस्मात् पाठात् विचित्य तेषु सन्धिविच्छेदो विधत्त ।

6. पाठादस्मात् बहुव्रीहिसमासयुतानि सर्वाणि पदानि सङ्गृह्य तेषां विग्रहं विधत्त ।

7. एषाम् पदानां स्ववाक्येषु प्रयोगं कुरुत—
   विधाय, मुहुः, इत्थम्, स्तुवन्, आहूय, धिक्, चिरेण ।

द्वादशस्तरङ्गः

भर्तृहरेः पद्यानि

(दस श्लोकों का यह संग्रह सुप्रसिद्ध कवि भर्तृहरि के नीतिशतकम् से लिया गया है।)

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित् किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥1॥

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोर्गर्दभः।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रैः प्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥2॥

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत् सर्वदा-
प्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।

कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान् प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्द्धते ॥3॥

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः ।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्तेऽखिलभूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥4॥

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥5॥

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥6॥

लोभश्चेदगुणेन किं, पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत् तपसा च किं, शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं बलेन, महिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥7॥

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः करुणाकुलानां
परोपकारेण न चन्दनेन ॥8॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥9॥

वह्निस्तस्य जलायते, जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्—
मेरुः स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते।
व्यालो माल्यगुणायते, विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतरं शीलं समुन्मीलति ॥10॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

अवलिप्तम्	गर्वितम्; अभिमानी।
गोचरं न याति	विषयतां न प्राप्नोति; प्राप्त नहीं हो सकती।
शम्	सुखम्; सुख।
अर्थिभ्यः	विद्यार्थिभ्यः याचकेभ्यः च; विद्यार्थियों और याचकों के लिए।
प्रतिपाद्यमानम्	*व्याख्यायमानम्, दीयमानम्; व्याख्या किया जाता हुआ,* दिया जाता हुआ।
कल्पान्तेषु	प्रलयेषु; प्रलयों में।
उज्झत	त्यजत; छोड़ दो।
केयूराणि	अङ्गदानि; भुजाओं के गहने।
संस्कृता	व्याकरणादिपरिशुद्धा; व्याकरण आदि से भली प्रकार परिष्कार की हुई।
दिशति	प्रयच्छति; देती है।
कुलीनः	कुले जातः, महाकुलप्रसूतः; ऊँचे कुल में उत्पन्न होने वाला।
करुणाकुलानाम्	दयालूनाम्; दया वालों का।
समाविशतु	सम् आ $\sqrt{}$विश्, लोट्, म० पु०, ए० व०, प्राप्नोतु; मिल जाए।
जलायते	जलम् इव आचरति; जल का सा व्यवहार करती है।
कुल्यायते	अल्पनदीवाचरति; छोटी नदी सा हो जाता है।
समुन्मीलति	समुल्लसति; शोभायमान होता है।

अभ्यासः

1. अ विभागगतवाक्यानि आ विभागगतैः उचितैः वाक्यैः संयोजयत—

अ	आ
क. तदा मूर्खोऽस्मीति	न चन्दनेन ।
ख. मानोन्नतिं दिशति	काञ्चनमाश्रयन्ते ।
ग. परोपकारेण	पापमपाकरोति ।
घ. सर्वे गुणाः	ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।

2. शुद्धं सन्धिविच्छेदं √ इति चिह्नेन चिह्नितं कुरुत—

क. यस्यास्ति
(i) यस्य+अस्ति
(ii) यसि+अस्ति
(iii) यस्याः+अस्ति

ख. श्रुतेनैव
(i) श्रुतेन+इव
(ii) श्रुते+न+एव
(iii) श्रुतेन+एव

ग. वह्निस्तस्य
(i) वह्निः+तः+य
(ii) वह्नि+स्तः+य
(iii) वह्निः+तस्य

घ. क्षीयन्तेऽखिलभूषणानि
(i) क्षीयन्त+एखिलभूषणानि
(ii) क्षीयन्ते+अखिलभूषणानि
(iii) क्षीयम्+ते+अखिलभूषणानि

3. अधोलिखितेषु सन्धिविच्छेदं कुरुत—

सर्वज्ञोस्मीत्यभवत्, नास्त्यौषधम्:, सर्वदाप्यर्थिभ्यः, वाण्येका, घनैरपयशः समुन्मीलति ।

4. एतस्मात् पाठात् सर्वाणि समस्तपदानि विचित्य तेषां विग्रहः प्रदर्शयत ।

5. निम्नाङ्कितैः पदैः निजसंस्कृतेन वाक्यानि विरचयत—

किञ्चित्, अनिशम्, एव, चेत्, यथेष्ठम्, वा, प्रति ।

त्रयोदशस्तरङ्गः

गङ्गालहरी

(निम्नलिखित श्लोक पण्डितराज जगन्नाथ की प्रसिद्ध कृति गङ्गालहरी से लिए गए है। इन पद्यों में गङ्गा की स्तुति की गई है।

गंगालहरी की रचना के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है। पण्डितराज जगन्नाथ मुगल सम्राट् *शाहजहाँ* की सभा के एक लब्धप्रतिष्ठ कवि थे। उनकी सम्राट् के महल में रहने वाली लवंगी नामक एक मुस्लिम दासी में आसक्ति थी। एक दिन जब सम्राट् ने पण्डितराज की कविता से प्रसन्न होकर मुँहमाँगा इनाम माँगने के लिए कहा तो उन्होंने लवंगी को माँग लिया। लवंगी तो पण्डितराज को मिल गई परन्तु उन्हें जाति-बहिष्कृत कर दिया गया। परिण्डतराज जगन्नाथ माँ गंगा के चरणों में शरण लेने के लिए लवंगी को लेकर वाराणसी में गंगा के तट पर बैठ गए और उसका स्तवन करने लगे। किंवदन्ती है कि पण्डितराज जैसे-जैसे श्लोक पाठ करते जाते थे वैसे-वैसे गंगा का जल ऊपर उठता जाता था। अन्त में जब उन्होंने अपने काव्य का बावनवाँ और अन्तिम श्लोक पढ़ा तो गंगा ने उनको लवंगी सहित हमेशा के लिए अपनी गोद में ले लिया।)

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्—
महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।

श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥1॥

स्मृतिं याता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या
हरत्यन्तस्तन्द्रां तिमिरमिव चन्द्रांशुसरणिः ।
इयं सा ते मूर्त्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला
ममान्तः सन्तापं त्रिविधमपि पापं च हरताम् ॥2॥

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम् ।
सुधातः स्वादीयस्सलिलभरमातृप्ति पिबतां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम् ॥3॥

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपा-
मपारस्ते मातर्जयति महिमा कोऽपि जगति ।
मुदा यं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः ॥4॥

कृतक्षुद्रैनस्कानथ झटिति सन्तप्तमनसः
समुद्धर्तुं सन्ति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः ।
अपि प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरितान्
नरानूरीकर्तुं त्वमिव जननि त्वं विजयसे ॥5॥

निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां
प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः ।
समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां
श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः ॥6॥

विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं
न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः ।
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयोर्-
ययोर्नान्तर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः ॥7॥

बधान द्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं
किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनः पन्नगगणैः।
न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणतया
जगन्नाथस्यायं सुरधुनि समुद्धारसमयः ॥8॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

समृद्धम्	बहु; अधिक।
लीलाजनितजगतः	लीलया जनितानि जगन्ति येन (ब० व्री०), तस्य; अनायास ही अतल, वितल आदि चौदह लोकों को उत्पन्न करने वाला।
खण्डपरशोः	खण्डयति इति खण्डः; खण्डः परशुः यस्य स खण्डपरशुः, तस्य; शत्रुओं के विनाश करने वाले कुल्हाड़े वाले का, शिव का।
मूर्त्तम्	देहधारी; मूर्तिमान्।
सुमनसाम्	शोभनं मनः येषां ते सुमनसः तेषाम् (ब० व्री०); शोभन मन वालों का, देवों का।
सुधासौन्दर्यम्	सुधायाः सौन्दर्यमिव सौन्दर्यं यस्य तत्; अमृत के समान सौन्दर्य वाला।
अकृतसुकृतानाम्	न कृतम् अकृतम् (न० त०), अकृतं सुकृतं यैः तेषाम्; पुण्य कर्म न करने वालों (मनुष्यों) की।
मूर्त्तिः	प्रवाहरूपा मूर्त्तिः; प्रवाह रूपी शरीर।
त्रिविधम्	तिस्रः विधाः यस्य तत् त्रिविधम्; तीन (कायिक, वाचिक, मानसिक) प्रकार का।
प्राज्यम्	महान्तम्, समुद्रवलयाङ्कितं; महान्, विस्तृत।
विलोलद्वानीरम्	विलोलन्ति इति विलोलन्तः, विलोलन्तः

वानीराः वेतसपादपाः यस्मिम् तत्; काँपते हुए वैत के वृक्षों वाले ।

आतृप्ति — आ तृप्तेः आतृप्ति (अव्य० स०); तृप्ति पर्यन्त ।

स्फुटपुलकसान्द्राः — स्फुटाश्च ते पुलकाश्च स्फुटपुलकाः तैः सान्द्राः; प्रकट रोमांच के घनत्व वाले, अत्यधिक रोमांचित ।

कृतक्षुद्रैनस्कान — कृतानि क्षुद्राणि एनांसि यैः ते कृतक्षुद्रैनस्काः तान्; छोटे-मोटे पाप करने वालों को । कप् समासान्तः ।

प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरितान् — प्रायश्चित्तस्य प्रसरणम् अनुष्ठानम् तस्य पन्थानः, तान् अतीतं चरितं येषां, तान्; प्रायश्चित्त (पाप के नाश मे समर्थ धर्म) के आचरण के मार्गों से परे चले गये चरित वालों को।

त्वम् इव जननि त्वम् — हे जननि ! तेरे जैसी तू ही है, तेरे जैसा और दूसरा कोई नहीं । अनन्वय अलकार । जहाँ उपमान और उपमेय दोनों ही धर्म एक ही वस्तु में हों वहाँ अनन्वय अलंकार होता है ।

निधानम् — निधिः, स्थानम् ।

विधानम् — उत्पादकम्; उत्पन्न करने वाला ।

समाधानम् — दुष्टकल्पनानाशकम्; शंकाओं को नष्ट करने वाला ।

तिरोधानम् — आच्छादकम्; छुपाने वाला ।

आधानम् — सम्पादकम्; सम्पन्न करने वाला, लाने वाला ।

आलीढा — आ + √लिह् + क्त + टाप्, अवलोकिता; चाटी गई, देखी गई ।

न्यक्कारः — धिक्कारः ।

लहरिलीलाकलकलः — लहरीणां लीला विकासः तस्य कलकलः; विलास का कोलाहल ।

द्रढिमरमणीयम्	अतिशयरमणीयम्; द्रढिमा। दृढस्य भावः। इमनिच्। पुं०; अत्यन्त रमणीय। दृढ — गाढ़, भृश।
हेलाम्	अवज्ञाम्।
समुद्धारसमयः	उद्धारकालः; उद्धार का समय।

अभ्यासः

1. **उत्तराणि लिखत—**

क. गङ्गायाः जल विशिष्टं भवति। कथम् ?

ख. गङ्गायाः मूर्तिः कान् तापान् हरति ?

ग. गङ्गाजलं पिबतां जनानामानन्दः सर्वान् अतिशेते। कैः शब्दैः कविः एतादृशं भावं प्रकटयति ?

घ. गङ्गा केनापि अतुलनीया—इति यत् कथितं तत्र किम् कारणम् ?

2. **भावार्थं लिखत—**

क. समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः।

ख. नरानूरीकर्तुं त्वमिव जननि त्वं विजयसे।

ग. परिहरतु तापं तव वपुः।

3. **पद्यानि पूरयत—**

क. अपि प्राज्यं राज्यं ······· ···························।
······································ निर्वाणपदवीम्॥

ख. विशालाभ्यामाभ्याम् ··································।
·· कलकलः॥

ग. बधान द्रागेव ···।
······································ समुद्धारसमयः॥

4. **गङ्गायाः गौरवं पण्डितराजवचनान्यनुसृत्य दशपङ्क्तिषु वर्णयत।**

5. **पदानां विग्रहं कुरुत—**

   सुधासौन्दर्यम्, निर्वाणपदवीम्, त्रिभुवनतले, सगरजाः, सन्तप्तमनसः, पूतात्मानः ।

6. **पदपरिचयं कुरुत—**

   झटिति, परित्यज्य, समुद्धर्तुम्, ऊरीकर्तुम्, कुर्याः ।

7. **पदप्रयोगं कुरुत—**

   प्राक्, अपि, खलु, हि ।

8. **उचितोत्तरं (√) इति चिह्नेन चिह्नितं कुरुत—**

   क. बालेन्दुः—बालश्चासौ+इन्दुः च—अव्ययीभावसमासः, कर्मधारयः, द्वन्द्वः ।

   ख. अशिवम्—न+शिवम्—बहुव्रीहिः, नञ् तत्पुरुषः, कर्मधारयः ।

   ग. त्रिजगत्—त्रयाणां जगतां समाहारः—कर्मधारयः द्वन्द्वः, तत्पुरुषः ।

9. **उचितपदेन रिक्तस्थलं पूरयत—**

   क. समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः — तत् । (किमपि, केनापि, कस्मै च)

   ख. इयं सा — मूर्त्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला । (ते, च, हि)

   ग. — बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियाम् । (समाधानम्, समाख्यानम्, सदामानम्)

चतुर्दशस्तरङ्गः

स्तोत्राणि

(वैदिक युग से आज तक समस्त विश्व का मानव किसी न किसी रूप में अपने आराध्य की स्तुति करता रहा है। ऐसे स्तुति-वाक्यों मे भावप्रवणता, आराध्य के प्रति समर्पणभावना एवं मङ्गल-कामना बड़ी ही मनोरम शैली में अभिव्यक्त होती रही हैं। प्रस्तुत संकलन में *शिव, सरस्वती, महावीर, बुद्ध, गुरु* आदि कुछ देवताओं, महापुरुषो एवं पूज्य व्यक्तियों की ऐसी स्तुतियाँ हैं जो अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। साहित्यिक अभिव्यंजना के कारण इनका आकर्षण और भी बढ़ जाता है।)

सरस्वतीस्तवः

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥1॥

सरस्वतीगीतिः

एहि लसत्सितशतदलवासिनि भारति मामकमास्यम्।
देहि च मे त्वदमरनिकरार्चितपादतले निजदास्यम् ॥2॥

जडतरजीवनमहह मदीयं श्रुतिविरहान्नहि नृषु गणनीयम्।
निरवधि कृपां कुरुष्व दयामयि व्यपगच्छेन्मम दास्यम् ॥3॥

विकसितनीलजलजकुलवासे विहितबृहस्पतिसमनिजदासे ।
जननि कृशोदरि मम रसनोपरि विरचय शाश्वतहास्यम् ॥4॥

महिम्नस्तोत्रं—पुष्पदन्तकृतम्

त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥5॥

मुकुन्दमाला स्तोत्रं—कुलशेखरकृतम्

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनेदोद्गीर्णबाष्पाम्बुना ।
नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिना-
मस्माकं सरसीरुहाक्ष सततं सम्पद्यतां जीवितम् ॥6॥

देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्—शङ्कराचार्यकृतम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥7॥

गुरुस्तुतिः

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ॥8॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥9॥

श्रीपार्श्वजिनस्तवः—श्रीधर्मसूरिकृतः

ये मूर्ति तव पश्यतः शुभमयीं ते लोचने लोचने
या ते वक्ति गुणावलीं निरुपमां सा भारती भारती ।

या ते न्यञ्चति पादयोर्वरदयोः सा कन्धरा कन्धरा
यत्त ध्यायति नाथ वृत्तमनघं तन्मानसं मानसम् ॥10॥

कल्याणमन्दिरस्तोत्रम्—आचार्य सिद्धसेनकृतम्

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिनसंस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोपहत पान्थजनान्निदाघे
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥11॥

प्रज्ञापारमितास्तोत्रम्—नागार्जुनकृतम्

निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं प्रज्ञापारमितेऽमिते।
या त्वं सर्वानवद्याङ्गि निरवद्यैर्निरीक्ष्यसे ॥12॥

आकाशमिव निर्लेपां निष्प्रपञ्चां निरक्षराम्।
यस्त्वां पश्यति भावेन स पश्यति तथागतम् ॥13॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

कुन्देन्दुतुषारहारधवला — कुन्दानि (पुष्पविशेषाः) इन्दुः, तुषारः (हिमम्), हारः (मुक्ताहारः)—एतेषां समाहारः—कुन्देन्दुतुषारहाराः ते इव धवला कुन्देन्दुतुषारहार-धवला। कुन्द का फूल, चंद्र, बर्फ, मोतियों की माला इनके समान श्वेतवर्णवाली, सरस्वती।

शुभ्रवस्त्रावृता — शुभ्रेन वस्त्रेण आवृता, सफेद वस्त्र धारण करने वाली।

वीणावरदण्डमण्डितकरा — वीणायाः यः वरः श्रेष्ठः दण्डः तेन मण्डितः करः यस्याः सा। वीणा के श्रेष्ठ दंड से जिसका हाथ शोभित है।

श्वेतपद्मासना — श्वेतं पद्मं कमलम् । तदेव आसनं यस्याः सा । जो श्वेत कमलपर विराजमान है ।

निःशेषजाड्यापहा — निःशेषं अथवा निःशेषेण जाड्यम् अपहन्ति दूरीकरोति । जो मन्दता अर्थात् जड़ता को पूरी तरह दूर कर देती है ।

लसत्सितशतदलवासिनि — लसत्+सित+शतदल+वासिनि (संबोधन ए० व०) सित=श्वेत, शतदल जिसमें सौ पंखुड़ियाँ है, अर्थात् कमल । लसन्ति सितानि शतदलानि लसत्सितशतदलानि । तेषु वासो यस्याः सा लसत्सितशतदलवासिनी । सम्बोधन में लसत्सित-शतदलवासिनि ।

आस्यम् — वदनम्, मुखम्, मुँह ।

अमरनिकरार्चितपादतले — अमराः देवाः, निकरः समूहः, अर्चितः पूजितः, अमरनिकरैः देवसमूहैः अर्चितं पादतलम् यस्याः सा, सम्बो०, ए० व० ।

श्रुतिविरहात् — श्रुतेः विरहः, तस्मात् । पञ्चमीतत्पु० । श्रुतिः=(1) वेद (2) ज्ञान ।

गणनीयम् — √गण्+अनीयर्, गणना करने योग्य ।

निरवधि — निर्गतः अवधिः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा, निरवधि । क्रिया वि० बहु० ।

व्यपगच्छेत् — वि+अप+√गम् विधिलिङ्, प्रथम पुरुष, ए० व०, दूर हो ।

विकसितनीलजलजकुलवासे — नीलजलजानि—विकसित हुए नील कमल, कुलम्—समुदायः, षण्डः—निकरः, समूहः, विकसितानां जलजानां कुलम्, तस्मिन् वासः यस्याः सा, बहु०, सम्बोधन, ए० व० ।

विहितबृहस्पतिसमनिजदासे — विहितः (कृतः) बृहस्पतिना समः निजः (आत्मज्ञः) दासः यया सा, जिसने अपने दास को बृहस्पति के समान बनाया है । यहाँ *निजदास* कवि का ही विशेषण है । कवि अपने को *सरस्वती का दास* कहता है । वह सरस्वती से प्रार्थना करता है कि वह उसे बृहस्पति के समान विद्वान् बना दे ।

कृशोदरि	कृशं (तनु) उदरं यस्याः सा। सम्बोधन, ए० व० जिसका उदर कृश है।
त्रयी साङ्ख्यम्······ ···वैष्णवमिति	इस श्लोक की पहली पंक्ति मे परमेश्वर की आराधना के पाँच मार्ग गिने गये हैं—
	(i) त्रयी—तीन वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद।
	(ii) साङ्ख्य—प्रसिद्ध छः दर्शनों में से एक।
	(iii) योगः—प्रसिद्ध छः दर्शनों में से एक।
	(v) पशुपतिमतम्—शैवसंप्रदाय की अनेक शाखाओं मे से एक, जिसमें शिव की पशुपति के रूप में पूजा की जाती है।
	(v) वैष्णवम्—विष्णु की भक्ति का वैष्णव-संप्रदाय में प्राधान्य है।
प्रस्थानम्	संप्रदाय, विशेष दर्शन।
पथ्यम्	हितम्।
ऋजुकुटिलनानापथजुषाम्	नाना पन्थानः, नानापथाः, कर्मधा०। ऋजवः (सरलाः) कुटिलाः (वक्राः) च, ऋजुकुटिलाः, कर्मधा०। ऋजुकुटिलाः नाना पथाः, ऋजुकुटिल-नानापथाः। कर्मधा०। तान् जुषन्ति (अनुसरन्ति स्वीकुर्वन्ति वा) इति, ऋजुकुटिलनानापथजुषः (कृदन्त)। तेषाम्, सीधे टेढ़े आदि अनेक मार्गों को अपनाने वाले।
गम्यः	√गम्+यत्, गन्तव्य, प्राप्य स्थल।
पयसाम्	जलानाम्।
अर्णवः	समुद्रः, सागरः।
सरोमोद्गमैः	रोम्णां (केशानां) उद्गमः, षष्ठीतत्पु०-रोमोद्गमैः सह, सरोमोद्गमाः, जिन पर रोंगटे खड़े हुए हों। यह पद गात्रैः का विशेषण है।
स्वरगद्गदेन	स्वरेण गद्गदः, तेन।

उद्गीर्णबाष्पाम्बुना — उद्गीर्णं वाष्पाम्बु (नेत्रजलम्, अश्रु) येन सः तेन। यह न्यूनेन का विशेषण है। ऐसी आँख जिससे आँसू फूट पड़े हों।

त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिनाम् — तव चरणौ त्वच्चरणौ—तेरे (भगवान् विष्णु के) चरण। अरविन्द युगले, दो कमल। ध्यानामृतम् ध्यान रूपी अमृत। आस्वादिनः—जो आस्वाद करते हैं। त्वच्चरणौ एव अरविन्दयुगलम्। कर्मधा०। तस्य ध्यानम्। तदेव अमृतम्। तस्य आस्वादिनः। षष्ठीतत्पु०। तेषाम्। आपके चरणयुगलरूपी कमलद्वय का ध्यान रूपी जो अमृत है, उसका रस लेने वाले। यह *अस्माकम्* का विशेषण है।

सरसीरुहाक्षः — सरसीरुहम्—सरोवर में पैदा होने वाला कमल। सरसि रोहति इति सरसीरुहे। ते इव अक्षिणी यस्य: सः। बहुव्री०।

यन्त्रम् — यन्त्र को। तांत्रिक विधान के अनुसार इष्टदेवता की रेखाओं और मंडलों से निष्पन्न एक विशिष्ट आकृति, सोना, चाँदी आदि धातुओं के पत्रों पर उट्टंकित की जाती है। उस उत्कीर्ण चित्राकृति को *यन्त्र* कहते हैं।

आह्वानम् — बुलाना।

मुद्राः — तांत्रिक पूजाविधान का एक अंग। आराधना करने वाले अपने हाथ की उंगलियों को कई तरह दिखाते हैं। उस विशिष्ट आकृति को मुद्रा कहते हैं।

अज्ञानतिमिरान्धस्य — अज्ञानमेव तिमिरम् (तमः, अन्धकारः) कर्मधा० तेन अन्धः, तस्य। जो अज्ञान के अन्धकार से अन्धा बना हुआ हो।

ज्ञानाञ्जनशलाकया — ज्ञानमेव अञ्जनम् (कज्जलम्) तस्य शलाका। ज्ञानरूपी अंजन की शलाका से।

चक्षुः — नयनम् (नपुं०)।

उन्मीलितम् — उद्घाटितम् (आँख) खोली गई हो।

महेश्वरः	महान् चासौ ईश्वरः, कर्मधा०, शिव ।
गुणावलीम्	गुणानाम् आवली, षष्ठीतत्पु० ताम् । गुणों की पंक्ति (लड़ी) ।
निरुपमाम्	निर्गता उपमा यस्याः सा, बहु०, ताम् । जिसकी कोई उपमा (समानता) न हो, बेजोड़ ।
न्यञ्चति	नि+√अञ्च्, झुकती है ।
कन्धरा	गर्दन ।
अनघम्	अविद्यमानम् अघं यस्य तत्, बहुव्री० । (मानसम् का विशेषण ।)—निष्पाप ।
अचिन्त्यमहिमा	अचिन्त्यः महिमा यस्य । बहु० । जिसकी महिमा विचारों से परे हो ।
पाति	√पा, वर्तमान, प्रथम पुरुष, ए० व०, रक्षति ।
तीव्रातपोपहतपान्थजनात्	तीव्रेण आतपेन उपहतः पान्थजनः तस्मात् । आतप (धूप) से संतप्त पथिक ।
प्रीणाति	√प्री, वर्तमान, प्रथम पुरुष, ए० व०, सन्तोषयति, आह्लादयति ।
निर्विकल्पे	निर्गतः विकल्पः यस्याः सा । सम्बोधनम् । जिससे सब प्रकार के विकल्प निकल गये है । प्रज्ञापारमिता का विशेषण । (विकल्प-शब्द के भारतीय दर्शनो मे अनेक अर्थ हैं—यहाँ पर उसका अर्थ भ्रान्ति, संशय, हो सकता है ।) भ्रान्ति आदि से रहित, नाम, जाति आदि योजना से रहित ।
प्रज्ञापारमिता	इस श्लोक में **प्रज्ञापारमिता** का स्तवन किया गया है । बोधिसत्त्व को बुद्ध की अवस्था या पूर्णत्व प्राप्त करने के लिए क्रमशः छः अवस्थाओं में से जीना पड़ता है । दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान और अन्तिम की पूर्णावस्था—प्रज्ञापारमिता है । इसका शब्दशः अर्थ है—सबसे श्रेष्ठ ज्ञान । इसी पूर्णावस्था का स्तवन इस श्लोक में किया गया है ।

अमिते	अनन्ते ।
सर्वानवद्याङ्गि	सर्वाण्यपि अनवद्यानि अङ्गानि यस्याः सा । जिसके समूचे अवयव सुंदर या निर्दोष हों ।
निरवद्यैः	निर्गतानि अवद्यानि येभ्यः ते । बहु० । (जनैः) जो सब प्रकार के अवाच्य दोषों से मुक्त हो ।
निर्लेपाम्	निर्गता लेपाः यस्याः सा, बहु० ताम् । जो सब प्राकृतिक वस्तुओं से अलिप्त है ।
निष्प्रपञ्चाम्	निर्गतः प्रपञ्चः यस्याः सा, ताम् । (बहुव्री०) जो किसी प्रकार के विस्तार या विपरीतभाव से मुक्त है ।
निरक्षराम्	निर्गतानि अक्षराणि यस्याः सा, ताम् । बहुव्री० जो सब प्रकार के अक्षरों से दूर है, अनिर्वाच्य ।
तथागतम्	बुद्ध को ।

अभ्यासः

1. **निम्नलिखितेषु शुद्धमुत्तरं (✓) इति चिह्नेन चिह्नयत—**

क. सरस्वत्या वस्त्रं धवलं/रक्तम् अस्ति ।
ख. सरस्वत्या आसनम् श्वेतं/नीलं कमलम् अस्ति ।
ग. सरस्वती प्रसन्ना सती निःशेषं जाड्यम्/शैत्यम् अपहन्ति ।
घ. पयसाम्/क्षीराणाम् एकः गम्यः अर्णवः भवति ।
ङ. सन्तप्तं पान्थं सरसः अनिलः/अनलः अपि प्रीणाति ।

2. **उत्तराणि लिखत—**

क. सरस्वती कैर्वन्दिताऽस्ति ?
ख. सर्वेषां दार्शनिकानाम् एको गम्यः कोऽस्ति ?
ग. भक्तः देव्याः किं किं न जानाति, किं च जानाति ?
घ. गुरुः केनाञ्जनेन अज्ञानतिमिरान्धस्य अन्धत्वं दूरीकरोति ?
ङ. प्रज्ञापारमिता कीदृशी वर्णिताऽस्ति ?
च. यः प्रज्ञापारमितां पश्यति स कं पश्यति ?

3. दक्षिणभागे स्तोत्रनामानि वामभागे च स्तोत्राणां कवेः नामानि लिखितानि सन्ति । तानि यथायथं संयोजयत—

क. मुकुन्दमाला	पुष्पदन्तः
ख. प्रज्ञापारमितास्तोत्रम्	सिद्धसेनः
ग. कल्याणमन्दिरस्तोत्रम्	नागार्जुनः
घ. महिम्नस्तोत्रम्	कुलशेखरः

4. कोष्ठके दत्तेभ्यः पदेभ्यः उचितेन पदेन रिक्तस्थानं पूरयत—

क. तस्मै श्री गुरवे ……… (कृतः, नमः, स्तुतः)

ख. तदपि च न जाने ……… (स्तुतिकथाः, अनुसरणम्, आचरणम्)

ग. ……… पाति भवतः । (तवापि, कृष्णोऽपि, नामापि)

घ. निरवधि ……… कुरुष्व । (दास्यम्, घृणाम्, कृपाम्)

5. उचितं सन्धि-विच्छेदं निर्दिशत—

क. अर्णव इव
(i) अर्णवः+इव
(ii) अर्णवे+इव
(iii) अर्णः+वः+इव

ख. गम्यस्त्वमसि
(i) गम्यः+तु+अम्+असि
(ii) गम्यः+त्वम्+असि
(iii) गम्+यः+त्वम्+असि

ग. सरसोऽनिलोऽपि
(i) स+रसः+अनिलः+अपि
(ii) सरसः+निलः+अपि
(ii) सरसः+अनिलः+अपि

पञ्चदशस्तरङ्गः

प्रकीर्णपद्यानि

(संस्कृत साहित्य में *सुभाषितों* का विशेष महत्त्व है। उनमें एक अपूर्व रस होता है; जिसके आगे अमृत का रस भी फीका पड़ जाता है। अच्छी-अच्छी बातें उनमे कही रहती है। *सुभाषित* अथवा उसकी पर्यायवाची सूक्ति का यही अर्थ है। सुभाषित संस्कृत वाङ्मय की विशेषता है और प्राचीन ग्रन्थों में ये यत्र-तत्र दिखाई पड़ते है। उनमें से निदर्शनार्थं कुछेक सुभाषित प्रस्तुत पाठ में प्रस्तुत किए जा रहे है। उद्‌बोधक वाक्य होने के कारण उनकी जीवनोपयोगिता स्पष्ट है। साहित्यिकता का पुट भी इनमें विद्यमान है जो उन्हें बहुत ही आकर्षक बना देता है।)

अन्यापदेश शतकम् *(नीलकण्ठदीक्षितविरचितम्)*

छायावृक्षमुपाश्रयन्ति पथिषु श्रान्ता हि पान्थाः समं
तेष्वेकोऽस्य शुभं शुभेन मनसा हृष्यन्ननुध्यायति।
अन्यो हर्तुमपेक्षतेऽस्य विटपानाधारयष्टेः कृते
कश्चिन्निश्चिनुते कवाटफलकं कर्तुं तमेव क्षणात्॥1॥

पन्थाः कर्दमितः पयः कलुषितं हंसाः कृता दूरतः
पीड्यन्ते च यदेवमर्थिन इति क्रूरारवैश्चातकाः ।
सोढा हे तव हे पयोद सकलं शक्नोपि दातुं स्वतः
किं त्वं शीकरमेकमप्युदधिना लोभो यदि स्वीकृतः ॥2॥

कलिविडम्बनम् *(नीलकण्ठदीक्षितविरचितम्)*

शुष्कोपवासो धर्मेषु भैषज्येषु च लङ्घनम् ।
जपयज्ञश्च यज्ञेषु रोचते लोभशालिनाम् ॥3॥

शक्तिं करोति सञ्चारे शीतोष्णे मर्षयत्यपि ।
दीपयत्युदरे वह्निं दारिद्र्यं परमौषधम् ॥4॥

चारुचर्या *(क्षेमेन्द्रविरचिता)*

न विवादमदान्धः स्यान्न परेषाममर्षणः ।
वाक्पारुष्याच्छिरश्छिन्नं शिशुपालस्य शौरिणा ॥5॥

गुरुमाराधयेद् भक्त्या विद्याविनयसाधनम् ।
रामाय प्रददौ तुष्टो विश्वामित्रोऽस्त्रमण्डलम् ॥6॥

दर्पदलनम् *(क्षेमेन्द्रविरचितम्)*

रूपं वयः शौर्यमनङ्गभोगं
प्रज्ञाप्रभावं विभवं वपुश्च ।
अश्नाति कालभ्रमरः समन्तात्
पुंसां हि किञ्जल्कमिवाम्बुजानाम् ॥7॥

भामिनीविलासः *(जगन्नाथपण्डितेन विरचितः)*

अयि दलदरविन्दस्यन्दमानं मरन्दं
तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गाः ।
दिशि दिशि निरपेक्षस्तावकीनं विवृण्वन्
परिमलमयमन्यो बान्धवो गन्धवाहः ॥8॥

नितरां नीचोऽस्मीति त्वं खेदं कूप मा कदाऽपि कृथाः ।
अत्यन्तसरसहृदयो यतः परेषां गुणग्रहीताऽसि ॥9॥

इयत्यां सम्पत्तावपि च सलिलानां त्वमधुना
न तृष्णामार्तानां हरसि यदि कासार सहसा ।
निदाघे चण्डांशौ किरति परितोष्यङ्गनिकरं
कृशीभूतः केषामहह परिहर्तासि खलु ताम् ॥10॥

सत्पूरुषः खलु हिताचरणैरमन्द-
मानन्दयत्यखिललोकमनुक्त एव ।
आराधितः कथय केन करैरुदारै-
रिन्दुर्विकासयति कैरविणीकुलानि ॥11॥

दूरीकरोति कुमतिं विमलीकरोति
चेतश्चिरन्तनमघं चुलुकीकरोति ।
भूतेषु किं च करुणां बहुलीकरोति
सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति ॥12॥

धम्मपदम् *(संस्कृतच्छाया)*

अप्रमादोऽमृतपदं प्रमादो मृत्योः पदम् ।
अप्रमत्ता न म्रियन्ते ये प्रमत्ता यथा मृताः ॥13॥

धर्मं चरेत् सुचरितं न नाम दुश्चरितं चरेत् ।
धर्मचारी सुखं शेते अस्मिंल्लोके परस्मिश्च ॥14॥

वर्जनं सर्वपापानां कुशलानामुपार्जनम् ।
स्वचित्तशोधनं चैतद् बुद्धानामनुशासनम् ॥15॥

पद्मपुराणम् *(रविषेणाचार्यकृतम्)*

न कश्चित्स्वयमात्मानं शंसन्नाप्नोति गौरवम् ।
गुणा हि गुणतां यान्ति गुण्यमानाः पराननैः ॥16॥

उदारसंरम्भवशं प्रपन्नाः प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः ।
नरा न तीव्रं गणयन्ति शास्त्रं न पावकं नैव रविं न वायुम् ॥17॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

उपाश्रयन्ति	उप+आ+√श्रि =आश्रय लेते हैं।
पथिषु	पथिन्, सप्तमी ब० व०, मार्गों में।
हृष्यन्	√हृष्+शतृ, आनंदित होते हुए।
अनुध्यायति	अनु+√ध्यै, प्रथम पुरुष, ब० व०, ध्यान करते हैं।
विटपान्	वृक्षों की शाखाओं को।
कवाटफलकम्	द्वारफलकम्।
कर्दमितः	कर्दम (कीचड़)+इतच् प्रत्यय, प्रथमा ए० व० कीचड़ से भरा हुआ।
सोढाहे	√सह्, लट्, उत्तम पुरुष, ए० व०। सहन करूँगा।
पयोदः	पयः ददाति इति। मेघः।
शीकरः	तुषारकण।
भैषज्येषु	वैद्य के काम।
लोभशालिनाम्	लोभेन शालन्ते इति लोभशालिनः। तेषाम्। लोभी, लालची।
मर्षयति	√मृष्, प्रेरणार्थक, प्रथम पुरुष, ए० व०, सहन करवाता है।
विवादमदान्धः	विवादस्य मदः तेन अन्धः। विवाद के उन्माद से अन्धा अर्थात् विवेकशून्य। महाभारत के अनुसार महापापी शिशुपाल का शिरच्छेद श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से किया था।
विद्याविनयसाधनम्	विद्या च विनयः च विद्याविनयौ। द्वन्द्व। तयोः साधनम् कारणम्, षष्ठी तत्पुरुष। विश्वामित्र एक विख्यात महर्षि थे। उनके यज्ञों मे अनेकानेक राक्षस विघ्न डाला करते थे। त्राटिका नामक राक्षसी ने भी बहुत आतंक मचाया था। विश्वामित्र राक्षसों का संहार करने के लिए दशरथ

की अनुमति पर राम और लक्ष्मण को वन ले गये। वहाँ पर विश्वामित्र ऋषि के साथ रहकर उनकी सेवा करते हुए राम ने राक्षसों का संहार किया। इससे संतुष्ट होकर विश्वामित्र उन्हें अस्त्र-शस्त्र और तत्संबंधी मंत्रों का उपदेश दिया।

अनङ्गभोगम्	रतिसुख, विषयविलास।
कालभ्रमरः	कालः एव भ्रमरः। कर्मधा०, काल रूपी भौंरा।
अश्नाति	√अश्, प्रथम पुरुष, ए० व०, खाता है।
किञ्जल्कः	परागः।
अम्बुजानाम्	कमलों का।
दलदरविन्द	दलत् अरविन्दम्, सम्बोधन, ए० व०, खिला कमल।
स्यन्दमानम्	√स्यन्द, बहने वाला, टपकने वाला।
मरन्दम्	मधु, शहद्।
लिहन्तः	√लिह, चाहने वाले।
मञ्जु	मधुरम् (क्रियाविशेषण)।
निरपेक्षः	निर्गता अपेक्षा यस्य सः, बहु० निरिच्छवृत्ति से, निष्काम।
विवृण्वन्	वि+√वृ, विस्तार करने वाला, फैलाने वाला।
परिमलः	सुगन्धः, आमोदः, सुवास।
गन्धवाहः	गन्धं वहति इति। गन्ध को दूर तक फैलाने वाला, अर्थात् वायु।
अत्यन्तसरसहृदयः	अति सरस अर्थात् भावुक हृदय धारण करने वाला। इस पद में सरस शब्द श्लिष्ट है। उसके दो अर्थ निकलते हैं— (1) स+रस=पानी के साथ, अर्थात् पानी से भरपूर=कुआँ, (2) स+रस=रस के साथ, अर्थात् रसिक, भावुक व्यक्ति।
गुणग्रहीता	गुणानां ग्रहीता, गुणों को लेने वाला। यहाँ पर भी गुण के दो अर्थ हैं—

(1) रस्सी, कुएँ के संदर्भ में,
(2) स्वभाव की विशेषता।

आर्तानाम्	दुःखितानाम्, दुखी लोगों का।
कासारः	सरः, तालाब।
निदाघे	ग्रीष्मऋतौ, गरमी के मौसम में।
चण्डांशौ	चण्डाः अंशवः यस्य सः। बहु०, गर्म किरणोंवाला, सूर्य। सप्तमी, ए० व०।
किरति	√कृ$_6$=पसारना, फैलाना।
परिहर्ता	परि+√हृ, परिहरण करने वाला, (प्यास को) बुझाने वाला।
कृशीभूतः	√कृश्+च्वि+√भू+क्त, जो सूख गया है।
हिताचरणैः	हितयुक्तैः आचारणैः, हितयुक्त कर्मों से।
अमन्दम्	क्रियावि० बहुत, भरपूर।
इन्दुः	चन्द्रः।
कैरविणीकुलानि	कुमुदिनीषण्डाः (चन्द्रमा के प्रकाश में खिलनेवाली) कमलिनियों का समूह।
दूरीकरोति	दूर करता है। (*च्विरूप, अभूततद्भावे च्वि.*) न दूरम्-अदूरम्। अदूरं दूरं सम्पद्यमानं करोति-दूरीकरोति। इसी तरह *विमलीकरोति, चुलुकीकरोति, बहुलीकरोति* इत्यादि रूपों को सिद्ध की जा सकती है। कृशीभूतः—में भी यही 'च्वि' है।
आतनोति	आ+√तन्, लट्, प्रथम पुरुष, ए० व०।
अप्रमादः	न प्रमादः, नञ् तत्पु०। चौकस या सावधान रहना, सावधानी।
अमृतपदम्	अमृतं पदम्, अविनाशी पद, परम स्थान।
म्रियन्ते	√मृ—वर्तमान, प्रथम पुरुष, ब० व०, मरते हैं।
सुचरितम्	शुद्ध चरित्र या आचरण वाला—धर्म का विशेषण।
शेते	√शी, लट्, प्रथम पु०, ए० व०, सोता है।

कुशलानाम्	पुण्यकर्मणाम् ।
स्वचित्तशोधनम्	स्वमनः शुद्धीकरणम्, अपने मन को शुद्ध अर्थात् बुरे विचारों से अलिप्त रखना ।
गुण्यमानाः	√गुण्, वि० गिने जाने वाले, प्रस्तुत किये जाने वाले ।
प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः	प्रारब्धं यत् कार्यं तदर्थं नियुक्तानि चित्तानि येषां ते । प्रारम्भ किए कामों में जिनका मन लगा है ।

अभ्यासः

1. **उत्तराणि दीयन्ताम्—**

क. लोभशालिभ्यः किं किं रोचते ?

ख. दारिद्र्यं परमौषधं कथं स्वीकृतम् ?

ग. शिशुपालस्य शिरः शौरिणा यच्छिन्नं तत्र किं कारणम् ?

घ. कालभ्रमरः पुंसां किं किम् अश्नाति ?

ङ. सत्पुरुषचन्द्रमसो : किं साम्यं वर्णितम् ?

2. **कोष्ठकात् उचितं शब्दं नीत्वा रिक्तस्थानं पूरयत—**

क. सतां सङ्गः ········· दूरीकरोति (कुमतिं, सुमतिं) ।

ख. ········· चेत. प्रसादयति (सतां संङ्गः, असतां संङ्गः) ।

ग. सतां सङ्गः चिरन्तनम् ········· चुलुकीकरोति (अघम्, अगम्) ।

घ. सतां सङ्गः भूतेषु ········· बहुलीकरोति (करुणाम्, क्रोधम्) ।

ङ. ········· सुखं शेते (धर्मचारी, अत्याचारी) ।

3. **सत्सङ्गतेः लाभान् पञ्चदशवाक्यैः वर्णयत ।**

4. **सन्धि-विच्छेदं कुरुत—**

तेष्वेकोऽस्य, मर्षयत्यपि, परमौषधम्, वाक्पारुष्याच्छिरश्छिन्नम्, चेतश्चिरन्तनम्, शंसन्नाप्नोति, नैव ।

5. **एकत्र समासयुक्तानि पदानि अपरत्र विग्रहवाक्यानि लिखितानि सन्ति, तानि यथायथं संयोजयत—**

क. शुष्कोपवासः	बहुव्रीहिः
ख. कैरविणीकुलानि	कर्मधारयः
ग. अप्रमादः	नञ् तत्पुरुषः
घ. सरसहृदयः	तत्पुरुषः

6. **पदपरिचयं दत्त—**

हृष्यन्, स्वीकृतः, चुलुकीकरोति, आनन्दयति, आराधितः ।

7. **वाक्येषु प्रयोगं कुरुत—**

यथा, नितराम्, यदि, कृत्वा, समम् ।